अवेस्ता की संस्कृतछाया

❋ प्राक्-कथन ❋



कार्यारम्भ

यह छोटी सी पुस्तिका एक बहुत बड़े कार्य का प्रारम्भ है। वह है अवेस्ता के पाठ का आवेस्तिकरूप में और संस्कृतरूप में प्रकाशन।

अवेस्ता का परिचय

अवेस्ता पारसियों का धर्मपुस्तक है। वह पारसियों का वेद है। पारसी आर्यों के हृदयों में उस के लिए वही श्रद्धा है, जो हिन्दु आर्यों के हृदयों में वेद के लिए है। पारसियों के धर्म-पुस्तक का आर्य-जाति के प्राचीन इतिहास और वैदिकधर्म के साथ बड़ा गहरा सम्बन्ध है, इस दृष्टि से महात्मा हंसराजजी (श्रीमद् दयानन्द ऐंग्लोवैदिककालेज कमेटी के पूर्व प्रधान) की चिर काल से यह इच्छा चली आ रही थी, कि अवेस्ता को नागरीलिपि में संस्कृतछाया और भाषार्थ-सहित प्रकाशित किया जाए। समय पाकर आप की यह इच्छा कार्यरूप में परिणत हुई। आप की प्रेरणा से दयानन्दकालेज कमेटी ने इस वृहत् कार्य के प्रारम्भ करने का निश्चय किया और इसकी सारी इतिकर्त्तव्यता का भार महात्माजी को सौंप दिया। तद्-नुसार महात्माजी ने मुझे इस कार्य के आरम्भ करने की आज्ञा दी। यह काम मेरे लिए सर्वथा नया था किन्तु महात्मा जी के वचन, जैसा कि मुझे सदा प्रोत्साहन देते रहे हैं, इस सर्वथा नए कार्य के विषय में भी वैसे ही सिद्ध हुए। मैंने उन की आज्ञा को स्वीकार कर लिया।

अवेस्ता के लिए प्रेम तो मेरे हृदय में भी बहुत पुराना है, अवेस्ता की कई एक बातें इस से पूर्व पढ़ी सुनी और ज्ञात थीं, पर अवेस्ता को इस से पहले न कभी आवे-स्तिक भाषा में पढ़ा था, न ही कभी आवेस्तिक लिपि में देखा था और न ही किसी ऐसे महानुभाव से परिचय था, कि जिस से इस विषय में कोई सहायता मिलने की आशा हो। सो पहले पहल कुछ देर तक तो काम अन्धेरे में हुआ। परिश्रम करने पर भी वास्तविक लक्ष्य पर पहुंचने का कोई मार्ग न मिला, तो भी ढूंढ भाल पूछ पाछ बराबर प्रवृत्त रखने से धीरे धीरे रस्ता सूझने लगा। और जब गाथा की पुस्तक आवेस्तिक लिपि समेत रोमन प्रतिलिपि में मुझे मिली, तब मैंने पहले पहल उससे आवेस्तिक वर्णों की पहचान आरम्भ की। फिर इस विषय के और भी पुस्तक मिले, जिन से बहुत

कुछ सहायता मिली । और यह बहुत बड़ा लाभ हुआ, कि अवेस्ता की समग्र मूल पुस्तक का पता मिल गया जो प्रोफैसर गैल्डनर (Karl. B. Geldner) महोदय ने बहुत बड़ा परिश्रम उठा कर आवेस्तिकलिपि में छपवाई है । इस पुस्तक के मिल जाने पर काम करने का सीधा रस्ता मिल गया । मूलपाठ के साथ पूर्वाचार्यों के किये अर्थों को मिला कर देखने से, वह घनिष्ठ सम्बन्ध, जो आवेस्तिक भाषा का संस्कृत के साथ है, धीरे धीरे स्पष्ट होने लगा । इसी अवसर पर पारसी महानुभाव श्रीजहांगीरजी सोराबजी बी०ए०पीएच० डी (बैरिस्टर पटना और कलकत्ता यूनीवर्सिटी के भाषाशास्त्र के अध्यापक (Professor of comparative philology) रचित अवेस्ता संग्रह प्रथमभाग (selections from Avesta) मेरे हाथ आया । इस सुयोग्य प्रोफैसर ने इस पुस्तक में संगृहीत अध्यायों पर जो इंग्लिश विवरण लिखे हैं, उन में अवेस्ता के कई शब्दों का संस्कृत से मिलान बड़ी योग्यता से दिखलाया है । उन का यह परिश्रम सूचित करता है कि जो लक्ष्य हमारे इस परिश्रम का है, वही लक्ष्य हमारे पारसी भाइयों के सम्मुख है । वस्तुतः यह काम है भी दोनों जातियों का साझा । अतएव अवेस्ता पाठ की संस्कृत छाया का उदाहरण विद्वानों के सम्मुख रखने के लिए मैंने भी वही पाठ चुना है जो उक्त संग्रह में पहला अध्याय है ।

श्रीमद् दयानन्द ऐंग्लोवैदिककालेज लाहौर
१ वैशाख १९९१ वि०

राजाराम
प्रोफैसर डी० ए० वी० कालेज,
लाहौर

* उपोद्घात *

ईरानी जाति और उसका प्राचीन साहित्य

पुरानी ईरानी भाषाओं का संक्षिप्त परिचय

ईरानी जाति एक आर्यजाति है और ईरान की प्रधान भाषा फ़ारसी एक आर्य-भाषा है। उस के अपने (न कि विदेशी) शब्दों और रूपों का (विशेषतः अपने प्राचीन रूप में) संस्कृत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।

ईरानी भाषा का प्राचीन साहित्य कुछ तो प्राचीन शिलालेख हैं, दूसरा ईरानियों का मूल धर्मपुस्तक अवेस्ता है। यह धार्मिक साहित्य इतना बड़ा है, कि इस से उस भाषा के समग्र रूप और अर्थ को समझने के लिए पर्याप्त है।

प्राचीन ईरानी साहित्य की भाषा

ईरान के इस प्राचीन साहित्य की भाषा एक ही होती हुई भी प्रान्तीयभेद से परस्पर विभिन्न है। शिलालेखों की भाषा पश्चिमी ईरान की भाषा है, इस को पुरानी फ़ारसी कहते हैं। इस से पहलवी और पहलवी से वर्तमान फ़ारसी निकली है। अवेस्ता की भाषा का ज़िन्द नाम प्रसिद्ध हो रहा है। है यह भूल। जो पहले पहल एक पश्चिमीय विद्वान् से हुई, और प्रचार पा गई। इसी से अवेस्ता भी ज़िन्द अवस्ता के नाम से प्रसिद्ध हो रही है। ज़िन्द अवेस्ता के पहलवी अनुवाद और भाष्य का नाम है न कि अवेस्ता और उस की भाषा का। वस्तुतः अवेस्ता की भाषा मीडिक भाषा है, किन्तु स्पष्टता के लिए अवेस्ता की भाषा और लिपिके लिए आवेस्तिक भाषा और आवेस्तिक लिपि समुचित व्यवहार प्रतीत होता है।

पुरानी फ़ारसी का साहित्य

पुरानी फ़ारसी का साहित्य वे शिलालेख हैं, जो ऐकोमीनिद राजवंश के खुद-वाए हुए हैं। इन में बेहिस्तन पहाड़ी में खुदे प्राचीन लेख मुख्य हैं। इन में भी पहले लेखों की अपेक्षा पिछले लेखों में भाषा का स्वरूप कुछ थोड़ा सा बदला भी है, पर वह अत्यल्प भेद भाषा का भेदक नहीं बना। ये सारे लेख मिलकर बहुत थोड़ा साहित्य है। ये लेख कीलकाक्षरों में खुदे हैं। लिपि अवेस्ता की अपेक्षा बड़ी सादी है। यह बाएँ से दाएँ को चलती है। वर्णमाला भी इस की अवेस्ता की अपेक्षा अधिक सरल है। इस

में ह्रस्व ऍ और ह्रस्व ऑ का अभाव है। उन के स्थान में संस्कृत के सदृश अ पाया जाता है। संस्कृत—यदि = पु० फ़ा० यदिय = अवे० यॅज़ि । सं० ह् अवे० में ज़् के रूप में, और पु० फ़ा० में द् के रूप में पाया जाता है। सं० हस्त=अवे० ज़स्त=पु० फ़ा० दस्त। पु० फ़ा० में अन्त्य व्यञ्जन का लोप पाया जाया है। सं० अभरत्=अवे० अबरत्= पु० फ़ा० अबर। पुरानी फ़ारसी का समय ईसा से पूर्व ५५० से ३३० तक का है।

पहलवी

पुरानी फ़ारसी समय पाकर पहलवी के रूप में परिणत हुई। इस में पुरानी फ़ारसी की अपेक्षा अनेक परिवर्तन हो गए। इसका समय लगभग सासानीय राजवंश का समय (परमार्थतः ई० सं० ३३१ से ६५१ तक) है। इसका साहित्य बड़ा है। सासानीय राजवंश के खुदे हुए शिलालेख हैं, अवेस्ता का पहलवी अनुवाद है और स्वतन्त्र लेख भी हैं।

ऐकीमीनिद राजाओं के समय की प्राचीन फ़ारसी से इस मध्यकालीन फ़ारसी में प्रधान परिवर्तन ये हुए हैं। एक तो शब्दों के रूपों की उतनी बहुतायत नहीं रही, दूसरा भिन्न भिन्न कारकों के द्योतन के लिए विभक्तियों के स्थान (हिन्दी के 'को, ने' आदि की तरह) अलग अलग सहायक शब्दों से काम लिया गया है।

वर्तमान फ़ारसी

पुरानी फ़ारसी पहलवी के रूप में से हो कर वर्तमान फ़ारसी के रूप में आई है। इस के उच्च साहित्य का आरम्भ महाकवि फिरदौसी (९४०–१०२० ईस्वी) के शाहनामा से होता है। इस काव्य में अरबी शब्दों का प्रभाव नाममात्र है। यह काव्य प्रायः शुद्ध फ़ारसी में है। इसके पीछे धीरे धीरे वर्तमान फ़ारसी के साहित्य में अरबी शब्दों का प्रयोग बढ़ता गया है। व्याकरण की दृष्टि से पहलवी से इस में बहुत थोड़ा भेद हुआ है। उच्चारण में प्रधान भेद ये हुए हैं। क्, त्, प्=ग, द्, ब् हो गए हैं और च=ज़्=ज़् हो गया है।

संस्कृत	प्राचीन फ़ारसी	पहलवी	वर्तमान फ़ारसी
मारक	मर्क	मर्क	मर्ग (मौत)
स्वतः	ह्वतो	खोत	ख़ुद (आप)
आप्	आप्	आप्	आब् (जल)
* रोच	रोच	रोज	रोज़ (दिन)

य् के स्थान प्रायः ज् हो गया है।

यातु	य़ातु	जादु	जादू

आरम्भ में दो व्यञ्जनों के बीच में उच्चारण की सुगमता के लिए एक स्वर बोला गया है।

भ्रातर्	ब्रातर		बिरादर्
स्था (धातु)	स्ता		सितादन या इस्तादन

यद्यपि वर्तमान फ़ारसी का मूल हमें पुरानी फ़ारसी में ही ढूंढना चाहिये, पर उस का साहित्य इतना बड़ा नहीं, कि जिस से हर एक शब्द का मूल रूप उस में मिल जाय। सो जो शब्द पु॰ फ़ा॰ में नहीं पाए जाते, उन शब्दों का मूल रूप अवेस्ता से दिखलाया जाता है। पुरानी फ़ारसी और आवेस्तिक भाषा का इतना मेल है, कि हो सकताहै, कि पुरानी फ़ारसी में भी वही रूप हो वा उस से बहुत मिलता जुलता हो।

अवेस्ता

अवेस्ता समग्र एक ही ग्रन्थ नहीं। उस के तीन भाग बड़े प्रसिद्ध हैं। यस्न, विस्पॅरॅद् और वेन्दीदाद्। यस्न में गाथाभाग सब से पुराना है। गाथाएं छन्दों में हैं, और पारसी ऋषि ज़रथुश्त्र का श्रीमुखवाक्य मानी जाती हैं। गाथाओं की भाषा वैदिक संस्कृत के साथ बहुत मिलती है। यहां तक कि बहुधा गाथाओं के छन्दों के छन्द नियमित वर्ण परिवर्तन के साथ वैदिक छन्द बन जाते हैं। जैसा कि प्रोफ़ेसर जैक्सन महोदय ने इस का यह उदाहरण दिया है।

नॅम	अमवन्तॅम	यज़तॅम
सूरॅम	दामोहु	सॅविश्तम
मिथ्रॅम	यज़ाइ	ज़ओथ्राब्यो

अर्थ—उस बल वाले शूरवीर सब प्राणियों के लिए हितकारी देवता मित्र की मैं आहुतियों से पूजा करूंगा।

यह शब्दशः नियमित वर्णों के परिवर्तन से इस प्रकार वैदिक वाक्य बन जाता है।

नम	अमवन्तम	यजतम
शूरम	धामसु	शविष्ठम
मित्रम	यजै	होत्राभ्यः

अवेस्ता के दूसरे भागों की भाषा गाथाओं की अपेक्षा नवीन है।

अवेस्ता की संस्कृतछाया

अवेस्ता की इस संस्कृत छाया का नाम **अवेस्ता की संस्कृतछाया** वा **संस्कृत अवेस्ता** है। इस में अवेस्ता के केवल शब्द और रूप संस्कृत रूप में दिये गये हैं, किन्तु वाक्य रचना अवेस्ता की ही रक्खी गई है। वाक्य में सन्धियां भी जो अवेस्ता में नहीं पाई जातीं, संस्कृत में भी नहीं दिखलाई हैं। इस से दोनों की एकता अधिक स्पष्ट रहती है।

अवेस्ता और संस्कृत के उच्चारण में प्रादेशिक भेद के कारण दोनों में जो वर्ण-परिवर्तन पाया जाता है, उस के कुछ प्रसिद्ध नियम यहां दिखलाते हैं। इन नियमों पर पहले ध्यान दे लेने से दोनों का मिलान संस्कृतज्ञों को स्वयं स्पष्ट होता जायगा और मनोरञ्जन भी होगा।

———

शिक्षा

वर्ण और दूसरे संकेत

१—वर्ण—अवेस्ता की वर्ण-माला में वर्ण ३६ हैं। उन में १४ स्वर, ३१ व्यञ्जन और १ संयुक्त है। उन की नागरी प्रतिलिपि यह है।

क. स्वर

ह्रस्व ६—अ	इ	उ	अॅ	एॅ	ओं		
दीर्घ ८—आ	ई	ऊ	अ̱	ए	ओ	आ̱	ऑ

ख. व्यञ्जन

कण्ठ्य ४—क्	ख़्	ग्	ग़्		
तालव्य २—च्	—	ज्	—		
दन्त्य ५—त्	थ़्	द्	द़्	त़्	
ओष्ठ्य ४—प्	फ़्	ब्	व़्		
नासिक्य ५—ङ्	ङ़्	न्	ं	म्	
अर्धस्वर ३—य् (य्̑)	र्	व् (व्̑)			
ऊष्मा ६—स्	श़्	श्	ष़	ज़्	ज़्
प्राण २—ह्	ह़्				
संयुक्त १—ह्व्					

२—अवेस्तालिपि दाएँ से बाएँ को चलती है।

३—स्वर—(क) अवेस्ता में स्वर अपने पूर्णरूप में अलग लिखे जाते हैं, मात्रा-रूप में नहीं।

(ख) अवेस्ता पाठ में स्वर (आघात—Accents) नहीं लिखे गए।

४—व्यञ्जन (क) व्यञ्जन संयुक्त भी लिखे जाते हैं, पर संयोग में भी उनका रूप पूर्ण रहता है। (ख) 'ह्व्' यह साधारण ह्व् से एक निराला संयोग है, इसी से वर्ण-माला में इस को स्थान दिया गया है। (ग) कई प्रतियों में 'म्' 'ह्म्' का एक वैकल्पिक संकेत पाया जाता है।

८—पद (क) अवेस्ता में पद सब अलग अलग लिखे जाते हैं । प्रत्येक पद के अन्त में उस को अलग करने वाला एक बिन्दु (·) रहता है।

(ख) संश्लिष्टपद (च आदि) संश्लेषक के साथ मिला कर लिखे जाते हैं। उन में बिन्दु नहीं रहता है।

(ग) समास के अवयव हस्तप्रतियों में प्रायेण अलग लिखे रहते हैं । मुद्रित पुस्तकों में इकट्ठे लिखे जाते हैं किन्तु अवयवों (पूर्व पर पदों) का भेद स्पष्ट रखने के लिए उन के बीच में एक बिन्दु दे दिया जाता है।

९—विराम हस्तप्रतियों में कहीं कहीं मिलते हैं, पर नियमबद्ध नहीं । उन के चिह्न ये हैं।

∵ अपूर्ण विराम

∴ पूर्ण विराम

°。° खण्डसमाप्ति चिह्न वा दीर्घतर विराम।

°°° °°° अध्यायसमाप्ति चिह्न वा दीर्घतम विराम।

टिप्पणी १—पुरानी फ़ारसी के शिलालेख कीलकाक्षरों में है, उन में तीन स्वर चिह्न है जो ह्रस्व और दीर्घ के लिए एक से हैं । व्यञ्जन ३३ हैं, जो किसी स्वर समेत अक्षररूप (सस्वररूप) के चिह्न है, न कि स्वरहीन (शुद्ध व्यञ्जनरूप के)। उन में २२ अ के साथ, ४ इ के साथ और ७ उ के साथ हैं। उन की अक्षरमाला यह बनती है।

क. स्वर ३

अ (आ) इ (ई) उ (ऊ)

ख. व्यञ्जन ३३ (अक्षररूप में अ, इ वा उ की मात्रा समेत)

(१) वर्ग्य वा स्पर्श

क	–	कु	ख	–	–	ग	–	गु
च	–	–	–	–	–	ज	जि	–
त	–	तु	थ़	–	–	द	दि	दु
प	–	–	फ़	–	–	ब		

(२) अनुनासिक – न नु म मि मु

(३) अर्ध स्वर—य र रु ल व वि

(४) ऊष्मा— स श ज़

(५) प्राण – ह

(६) संयुक्त— थ्ऱ

टिप्पणी २—यह लिपि कई अंशो में अधूरी है, क्योंकि इस में अ, इ, उ के ह्रस्व दीर्घ चिह्न एक में है। व्यञ्जन से परे दीर्घ आ दिखलाने के लिए अ स्वर वाले व्यञ्जन से परे एक और अ लगा दिया है, पर कभी कभी ' अ ' अन्त्य स्वर को स्पष्ट रखने के लिए भी दिया है। सन्ध्यक्षर अइ, अउ, आइ, आउ, दिखलाने के लिए अ मात्रा वाले व्यञ्जन से परे इ, उ लगा दिए हैं, पर कहीं इसी रूप में ये केवल इ, उ की मात्रा को ही प्रकट करते हैं, इत्यादि कठिनाइयों के होते हुए भी विद्वानों के लगातार अनथक परिश्रम से अब शिलालेखों के पाठ प्रायः शुद्ध पढ़ लिए गए हैं।

उच्चारण

७—साधारण विवरण—आवेस्तिक वर्णोच्चारण को समझने में पूर्व वैदिक वर्णोच्चारण पर, और उच्चारण को स्पष्ट करने वाले पारिभाषिक शब्दों पर ध्यान दे लेना आवश्यक है। वैदिकवर्णोच्चारण का स्पष्टीकरण यह है।

	अघोष			सघोष						
	ऊष्मा	१ अल्प प्राण	२ महा प्राण	३ अल्प प्राण	४ महा प्राण	अनुनासिक	अर्ध स्वर	समानस्वर ह्रस्व	दीर्घ	संहितस्वर
कण्ठ्य	ः, ᳵक	क	ख	ग	घ	ङ		अ	आ	
तालव्य	श	च	छ	ज	झ	ञ	य	इ	ई	ए ऐ
मूर्धन्य	ष	ट	ठ	ड	ढ	ण	र	ऋ	ॠ	
दन्त्य	स	त	थ	द	ध	न	ल	ऌ		
ओष्ठ्य	ᳵप	प	फ	ब	भ	म	व	उ	ऊ	ओ औ
					ह प्राण	ं नासिक्य				

८—स्वर (क) अवेस्ता और पु० फ़ा० के अ, आ, इ, ई और उ, ऊ संस्कृत के उच्चारण से पूरा मेल रखते हैं।

संस्कृत	अवेस्ता	पु० फ़ा०
क्षत्र	ख्षथ्र	ख्षथ्र
गातु	गातु	गाथु
चित्र	चिथ्र	चिथ्र
जीवति	जीवति	जीवति

पुत्र	पुथ्र्	पुथ्र्
भूमि=भूमी	बूमी	बूमी

(ख) ॲ अवेस्ता का एक विशेष अविस्पष्ट स्वर है। इस की ध्वनि बहुधा 'अ' और 'ऍ' से मिलतीसी है। इंग्लिश में जैसे gardener में e, measuring में u और history में o अविस्पष्ट है, इस प्रकार यह अविस्पष्ट उच्चरित होता है। संस्कृत 'ऋ' जो दो स्वरभक्तियों के मध्य में 'र्' ध्वनि का उच्चारण है, अवेस्ता में उस के स्थान ठीक ॲर्ॲ लिखा जाता है। वैदिक ऋ=अवे० ॲर्ॲ अर्थात् इस अविस्पष्ट स्वर की दो ध्वनियों की मध्य में र् ध्वनि है।

ॲ इस ॲ ध्वनि की समान दीर्घ ध्वनि है।

(ग) 'ए, ओ' का उच्चारण अवेस्ता में दो प्रकार का है-ह्रस्व और दीर्घ। दीर्घ ए,ओ का उच्चारण संस्कृत के सदृश है। ह्रस्व का उच्चारण संकुचित सा है। जैसा कि प्राकृत पव्वं, जोव्वण,पञ्जाबी 'ऍत्थे, ऑत्थे' में ऍ ऑ का है। ये 'ऍ, ऑ' एक, ओक के 'ए, ओ' से संकुचित हैं अतएव इन से परे द्वित्व हुआ है 'पव्वं, जोव्वण,ऍत्थे, ऑत्थे'। 'ए, ओ' का ह्रस्व उच्चारण वेद में भी होता था। जैसा कि सात्यमुग्रिराणायनीय उच्चारण करते थे। 'सुजाते ए अश्वसूनृते। अध्वर्यो ओ अद्रिभिः सुतम्' (देखो पा० १।१।४८ वा० ३ पर महाभाष्य)।

(घ) 'आ' यह अवेस्ता में 'आॲ' इन दो वर्णों के मिश्रितरूप में लिखा जाता है। उच्चारण दीर्घ 'आ' को किञ्चित् लटका कर बोलने से स्पष्ट रहता है।

(ङ) अवेस्ता में केवल 'अ, आ' सानुनासिक प्रयुक्त होते हैं। इन दोनों के लिए एक ही वर्ण नियत है, जो ह्रस्व (अँ) और दीर्घ (आँ) दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। इस लिए यहां भी उन दोनों के लिए एक ही वर्ण रक्खा है 'आँ'। यद्यपि यह दीर्घ है, पर इसी को ह्रस्व भी जानना चाहिये। दीर्घ का प्रयोग अधिक होने से दोनों के लिए एक चिह्न दीर्घ रक्खा है।

८—सन्ध्यक्षर अवेस्ता में ये पाए जाते हैं। 'आइ, आउ' (संस्कृत 'ऐ, औ' के सदृश बोले जाते हैं) अए, अओ, अउ, अए और ओइ।

९—वर्गों के प्रथम और तृतीय क्, च्, त्, प्, और ग्, ज्, द्, ब् संस्कृत के सदृश उच्चारे जाते हैं। अवेस्ता और पुरानी फ़ारसी में टवर्ग नहीं है।

१०—सप्राण—वेद में जो महाप्राण (ख्, घ्, थ्, ध्, फ्, भ्) हैं, वे अवेस्ता में प्रायः सप्राण बोले जाते हैं। (क) ख् और ग् का उच्चारण वही है, जो फ़ारसी के خ और غ का है। (ख) चवर्ग में कोई सप्राण नहीं। (ग) थ् इंग्लिश thin

के थ् के सदृश, द् इंग्लिश then के द् के सदृश बोला जाता है। थ् अघोष और द् सघोष है। त् सप्राण अघोष और सघोष दोनों है। अघोष ध्वनि तो त् थ् के मध्यवर्ती रहती है और सघोष ध्वनि द् द् के मध्यवर्ती। (घ) फ् ध्वनि वही है जो फ़ारसी ف और इंग्लिश f की है। व् की ध्वनि में व के साथ ह् का सम्पर्क पाया जाता है, और उच्चारण ऐसा रहता है जैसा कि पञ्जाब में अपढ़ ग्रामीण हवा के स्थान व्हा बोलते हैं। और जैसा कि जर्मन w बोलते हैं।

११—ऊष्मा–संस्कृत ऊष्मा केवल अघोष हैं। अवेस्ता में सघोष भी हैं। अवेस्ता में तालव्य श् के तीन प्रकार के उच्चारण हैं और मूर्धन्य ष् नहीं है।

(क) स्=सं० स् के समान अघोष उच्चरित होता है, इस की सघोष ध्वनि ज़् है। श् एक संकुचित श् है जैसे कि इंग्लिश 'dash' में। ज़् इस की सघोष ध्वनि है जो फ़ारसी का ژ है। श् स्पष्ट तालव्य ध्वनि है विशेषतः य् से पूर्व। ष् यह श् का एक परिष्कृतरूप है, जो मूर्धन्य ष् के निकट तो पहुंचता है, किन्तु शुद्ध मूर्धन्य नहीं। यह बहुधा सं० ष् का स्थान लेता है। निर्वचन की दृष्टि से यह बहुधा र्त् का स्थानापन्न है।

१२—नासिक्य–न् और म और ङ् संस्कृत के सदृश बोले जाते हैं। ङ्, कण्ठ्य ङ् का एक परिष्कृतरूप है। ं अवेस्ता में वर्ग्यानुनासिक है।

१३—अर्धस्वर– य्, व् आदि में सप्राण बोले जाते हैं। जैसे संस्कृत युवा और वात में। मध्य में तरल बोले जाते हैं, जो इय्, उव् के निकट पहुंचते हैं, उन को य्, व्, से प्र[illegible] किया है। र् संस्कृत के सदृश है। ल् ध्वनि अवेस्ता में नहीं है।

१४—ह् संस्कृत ह् के सदृश उच्चरित होता है। ह् उसी का एक परिष्कृतरूप है, जो य् से पूर्व बोला जाता है।

१५—संयुक्त ह्, शुद्ध ह् से कुछ सघन बोला जाता है, जिस की प्रवृत्ति ख्व् की ओर है।

टि०—१ उच्चारण में पु० फ़ा० के समानाक्षर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ का संस्कृत के साथ पूरा मेल है और सन्ध्यक्षर अइ, अउ, आइ, आउ का संस्कृत के सन्ध्यक्षर ए, ओ, ऐ, औ के साथ पूरा मेल है।

(२) वर्ग्य प्रथम क्, त्, प् संस्कृत के सदृश बोले जाते हैं। तृतीय ग्, द्, ब् भी संस्कृत के सदृश बोले जाते हैं। पर कहीं अवेस्ता के ग्, द्, व् के सदृश भी बोले जाते हैं।

च्, ज् भी संस्कृत के सदृश बोले जाते हैं, पर ज् कहीं ज़् भी बोला जाता है, जैसा कि निजायम=निज़ायम् है।

(३) सप्राण ख्, थ्, फ् अवेस्ता के सदृश बोले जाते हैं।

(४) अर्धस्वर य् और व् संस्कृत के समान बोले जाते हैं, और व्यंजन से परे इय्, उव् बोले जाते हैं (जैसा कि तैत्तिरीय बोलते हैं) । शियाति, शुवाम् (=सं० त्वाम्) ।

र् संस्कृत के सदृश बोला जाता है, संस्कृत ऋ के स्थान सम्भवतः अर् बोला जाता है—सं०कृत =पु० फ़ा० कर्त ।

ल् (जो अवेस्ता में नहीं है) पु० फ़ा० में केवल दो विदेशी नामों में ही प्रयुक्त हुआ है, हलदित और दुबाल ।

(५) ह् संस्कृत के सदृश बोला जाता है, पर कहीं इतना हल्का उच्चरित होता है कि आद्य में ' उ ' से पूर्व और मध्य में स्वर से पूर्व, छोड़ दिया जाता है ।

अवेस्ता की संस्कृत से तुलना

(१) वर्ण-प्रयोग

(क) स्वर प्रयोग

१६—**साधारण विवरण**—(१) अवेस्ता के स्वर ' अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ ' संस्कृत से मिलते हैं (२) अवेस्ता के अॅ, अ़, एॅ, ओॅ निराले स्वर हैं, आ, ऑ निराले हो कर भी संस्कृत में प्लुत आ ३ से और अनुनासिक अँ, आँ से मेल रखते हैं। इस प्रकार अवेस्ता में स्वरों का वैविध्य संस्कृत की अपेक्षा अधिक है। हां ' ऌ ' अवेस्ता में नहीं है।

समान स्वर

(क) संस्कृत अ, इ, उ ह्रस्व और आ, ई, ऊ दीर्घ की अवेस्ता से तुलना।

१७—अवेस्ता स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ साधारणतः संस्कृत स्वरों के साथ स्वरूप और परिमाण दोनों में समता रखते हैं। जैसे

(१) अवे० अ=सं अ; अवे० आ=सं० आ

अवेस्ता	संस्कृत	पु० फ़ा०	अर्थ
अप (उप०)	अप	अप	से
अव (उप०)	अव	अव	नीचे
अस्मन् (प्राति०)	अश्मन्	अस्मन्	आस्मान, पत्थर
अस्ति (क्रि०)	अस्ति	अस्तिय्	है
मातर् (प्राति)	मातृ (=मातर्)	मातर्	माता
ब्रातर्	भ्रातृ (=भ्रातर्)	ब्रातर्	भाई
स्ता (धा०)	स्था	स्ता	ठहरना

(२) अवे० इ=सं० इ, अवे० ई=सं० ई

पइरि (उप०)	परि	परिय्	चारों ओर
चित् (नि०)	चिद्	चिय्	भी
जीव	जीव	जीव	जीता हुआ

(३) अवे० उ=सं० उ; अवे० ऊ=सं० ऊ

उप (उप०)	उप	उप	समीप
उद् (उप०)	उद्	उद्	ऊपर
पुथ्र् (प्राति०)	पुत्र	पुथ्र्	पुत्र
बूमी (प्राति)	भूमि(=भूमी),	बूमी	भूमि
दूर	दूर	दूर	दूर

(आ) स्वरूप में अभेद और परिमाण में भेद।

१७—साधारण विवरण–ह्रस्व और दीर्घ के सम्बन्ध में अवेस्ता कहीं कहीं संस्कृत से विभिन्न हो जाती है। इस के कारण ये हैं।

(१) अवेस्ता के लेख में किञ्चित् असावधानता भी हुई है। अतएव एक ही शब्द वा एक ही रूप के लिखने के ढंग में अवेस्ता में वैविध्य पाया जाता है।

सं० आयु (उमर) के स्थान अवे० में आयु–और अयु–दोनों शब्द लिखे मिलते हैं। सं० समो (=समस्त) के स्थान अवे० में दोनों शब्द मिलते हैं—ह्मो और हामो। सं० सुतष्टम (अच्छा बना हुआ) के स्थान अवे० में दोनों शब्द मिलते हैं—हुतश्तॅम और हुताश्तॅम। सं० यजामहे, भरामहे इन एक प्रकार के रूपों के स्थान अवे० में यज़मइदे (म ह्रस्व) और भरामइदे (रा दीर्घ) ये दो प्रकार के रूप मिलते हैं। सं० अध्वानम (मार्गको) के स्थान गा० अवे० में अद्वानॅम (दीर्घ आ), पर य० अवे० में अद्वनॅम (ह्रस्व अ) मिलते हैं। सं० उप० 'आ' तो अवे० में बहुधा आता है। सं० आ वहति=अवे० अवज़इति इत्यादि।

(२) स्वर संक्रम भी दीर्घ के ह्रस्वोच्चारण वा लोप का निमित्त हुआ है। सं० मान (प्रत्यय–विद्यमान, क्रियमाण) अवे० में मन और म्न पढ़ा गया है।

(३) कहीं दैशिक उच्चारणभेद से भी भेद हुआ है, जैसे—सं० सनाम=अवे० हातॉम। सो कहीं—

(क) सं० आ=अवे० अ

सं० नाना (भांति भांति से)=अवे० नना। सं० मावते (मेरे जैसे के लिए)= अवे० मवइते। सं० भाजन (बर्तन)=य० अवे० बजिन। सं० द्वारम (द्वार)=य० अवे० द्वरॅम। सं० उर्वराणाम (वृक्षों का)=य० अवे० उर्वरनॉम।

(ख) सं० इ, उ=अवे० ई, ऊ

संस्कृत में जहाँ ह्रस्व इ, उ है, वहाँ अवे० में बहुधा दीर्घ पाया जाता है—

सं० शिष्यात् (शिक्षा दे)=अवे० सीषोइत्। सं० विश्वम् (सब)=अवे० वीस्पॅम। सं० वितस्तिम् (बालिश्त को)= अवे० वीतस्तीम्। सं० शुनः (=शुनो-कुत्ते का)=अवे० सूनो। सं० युष्मत् (तुम से) युष्माकम् (तुम्हारा)=अवे० यूष्मत्, यूष्माकॅम। सं० श्रुतः (=श्रुनो=सुना गया)=अवे० स्रूतो। सं० आहुतिस्=अवे० आज़ूइतिश्। सं० स्तुतिस् अवे० स्तूइतिश्। सं० स्तुहि=अवे० स्तूइदि (तू स्तुति कर)। सं० युध्यति=अवे० यूइध्यॅइति (वह लड़ता है)।

(ग) संस्कृत ई, ऊ=अवेस्ता इ, उ

सं० अनीकम् (चेहरा)=अवे० अइनिकॅम। सं० ईशानम् (शासन करने वाला) अवे० इसानॅम। सं० सूनवस् (=सूनवो)=अवे० हुनवो। सं० तनूनाम् (शरीरों का) अवे० तनुनाँम्।

ह्रस्व दीर्घ के मोटे नियम

१८—आ=अ

(क) अवेस्ता में संश्लिष्टपद चादि के योग में अनन्त्य (न अन्तला) 'आ' ह्रस्व हो जाता है-अवे० कतारो=सं० कतरस् (दो में से कौन), पर कतरश्चित्। अवे० दहाक (अजगर), पर दहकाच। अवे० आय्यो (इन के साथ), पर अइब्यस्च।

(ख) पञ्चमी आत् निपात हच से पूर्व अत् होता है। अवे० यिमत्हच (यम से)। अपख्तरत् हच नएमात् (उत्तरीय अर्ध से)

१९—इ, उ=ई, ऊ

(१) अवेस्ता में इ, उ अन्त्य 'म' से पूर्व नियमतः दीर्घ हो जाते हैं—

सं० पतिम्=अवे० पइतीम्। सं० धासिम (सृष्टि को)=अवे० दाहीम्। सं० तायुम् (चोर को)=अवे० तायूम्। सं० पितुम् (अन्न को)=अवे० पितूम्।

२०—एकाक्षर निपात का अन्त्य स्वर दीर्घ हो जाता है—

अवे० ज़ी (क्योंकि)=सं० हि। अवे० नी (नीचे)=सं० नि। अवे० नु (अब)= सं० नु (नू), अवे० फ्रा (आगे)=सं० प्र।

टि०—निपात 'च' यतः पूर्व पद से संश्लिष्ट रहता है इस लिए वह दीर्घ नहीं होता।

२१—अनेकाक्षर पद के अन्त्य स्वर, ओ को वर्ज कर, य०अवे० में ह्रस्व हो जाते हैं। सं० सेना=य०अवे० हएन। सं० पिता=य०अवे० पित। सं० परा=य०अवे० पर। सं० नारी=य० अवे० नाइरि। सं० शूरे (हे शूरस्वि)=य०अवे० सूरॅ। सं० भरते=य०अवे० बर इतॅ। सं० द्वा ऋजू (दो अंगुलियें)=य०अवे० द्व ऋज़ु।

टि०—य० अवे० में इस के कुछ अपवाद भी हैं—

य० अवे० पायू (दो रक्षक)। सं० पायू। य० अवे० मइन्यू=सं० मन्यू। य० अवे० अब्रू= सं० अभ्रू।

२२—गा० अवे० में सारे अन्त्य स्वर दीर्घ होते हैं—

(क) सं० असुर (हे शक्ति वाले)=गा० अवे० अहुरा=य० अवे० अहुर। सं० उत (भी)=गा० अवे० उता=य० अवे० उत। सं० कुत्र=गा० अवे० कुथ्रा=य० अवे० कुथ्र। सं० असि० (तू है)=गा० अही=य० अवे० अहि। सं० येषु (जिन में) गा० अवे० य एषू।

(ख) स्वर भक्ति भी (कुछ अपवादों को छोड़ कर) दीर्घ हो जाती है।

सं० आसुर् (थे)। गा० अवे० आङ्हर=य० अवे० आङ्हरॅ। सं० वधर् (शस्त्र)= गा० अवे० वधर=य० अवे० वधरॅ। पर सं० अन्तर्=गा० अवे० अंतर और अंतरॅ= य० अवे० अन्तरॅ।

टि०—संश्लिष्टक 'च' से पूर्व पद का अन्त्य स्वर कहीं दीर्घ कहीं ह्रस्व पाया जाता है।

येह्याचा (और जिस का)। वचहीचा=सं० वचसिच (और वचन में)। पर वॉहुचा मनङ्हा और वॉहूचा मनङ्हा दोनों पाये जाते हैं।

संस्कृत और अवेस्ता के स्वरों में स्वरूपभेद।

अवे० अॅ, अ, ऍ, ए, ओॅ ओ, आ, आँ=सं० अ, आ

२३—अवेस्ता की अॅ, अ, ऍ, ए, ओ, ओॅ आ, आँ स्वर ध्वनियां विशेष नियमों के साथ संस्कृत अ, आ की प्रतिनिधि हैं।

अवे० अॅ=सं० अ

२४—अवे. अॅ सं० अ का प्रतिनिधि होता है—

(क) अन्त्य न्, म् से पूर्व नियमतः (ख) अनन्त्य से पूर्व बहुधा (ग) व् से पूर्व कभी २।

सं० अविन्दन् (उन्हों ने पाया)=अवे० विंदॅन्। सं० सन्तम (होते हुए को) अवे० हंतॅम। सं० उपमम (सब से ऊंचा)=अवे० उपॅमॅम वा उपमॅम्। सं० शविष्ठ (महा बली)=अवे० सॅविश्त।

२५—सं० अ से निष्पन्न अवे० अॅ तालव्य य्, च्, ज्, ज़् से पूर्व कहीं कहीं इ हो जाता है।

सं० यम (जिस को)=अवे० यिम्। सं० वाचम (वाणी को)=अवे० वाचिम्। सं० भाजन (भांडा)=अवे० बजिन। अवे० दुज़िम्नो और दुज़ॅम्नो।

अवे० अ=सं० अ, (क्वाचित्क ओ) ।

२६—अवेस्ता का अ जो अॅ का दीर्घ रूप है, वह गा० अवे० में य० अवे० के अॅ, अ और कभी २ ओ, ऑ के स्थान प्रयुक्त होता है । गा० अवे० अज़म् । य० अवे० अज़ॅम्=सं० अहम् । गा० अवे० अमवंतॅम्=य० अवे० अमवंतॅम् = सं० अमवन्तम् (बल वाले को) । गा० अह्मा = य = अह्मा=सं० अस्माकम् । गा० अवे० य=य० अवे० यो=सं० यम् (जो) । गा० अवे० न=य अवे०=नो=सं० नस् । गा० स्तरम्=य० स्तॅरम् (तारे को) । गा० हम्=य० हॅम्=सं० सम । गा० ह्वर=य० ह्वॅर= सं० स्वर् (स्वर्ग) ।

२७—य० अवे० में अ (क) कहीं व् से पूर्ववर्ती अन्, अह् और आ के स्थान प्रयुक्त हुआ है । और

(ख) कहीं बिना किसी नियम के प्रयुक्त हुआ है जो गा० की अनुकृतिमात्र प्रतीत होता है ।

(क) द्रओंमब्यो । अवविश् (सहायताओं के साथ) । हएनब्यो (सेनाओं से) ।

(ख) य० गा० अवे० स्पनिश्त (पवित्रतम)। अमष स्पॅत (अमर्त्य पवित्र)। य० अवे० यज़न और यज़तॅ ।

(ग) कहीं सन्धि से भी हुआ है । य० अवे० फ़्रॅनओत् (फ्रअुनओत्) (उस ने अर्पण किया) ।

अवे० एॅ

२८—अवे० एॅ साधारणतः संस्कृत के उस अ, आ के स्थान प्रयुक्त होता है जो य् से परे है और जिस से परला अक्षर इ, ई, एॅ, ए वा य् वाला है ।

सं० रोचयति (चमकाता है)=य० अवे० रओचयेइति । सं० क्षयसि (तू शासन करता है)=गा० अवे० ख्शयेही । सं० अयानि (मैं जाऊं) य० अवे० अयॅनि=गा० अवे० अयॅनी । सं० यज्ञे=य० अवे० येस्नॅ=गा०अवे० येस्ने । सं० यस्याः (जिस का स्त्री लिङ्ग)=य० अवे० येङ्हा । सं० यस्य (जिस का पुं०)=गा० अवे० येह्या ।

२९—अवे० में पदान्त एॅ सं० ए के स्थान आता है ।

सं० अवसे (रक्षा के लिए)=अवे० अवङ्हे । सं० यजते (यजन करता है)= य० अवे० यज़इतॅ ।

३०—सं० य ह्सित हो कर अवे० में एॅ हो जाता है । सं० कस्य (किस का) गा० अवे० कह्या=य० अवे० कहे ।

अवे० ए

३१—अवे० ए,जो ऍ का दीर्घ रूप है, प्रयुक्त होता है (क) सन्ध्यक्षर अए=सं० ए में (ख) एकाक्षर के अन्त में सर्वत्र, और (ग) गा० में अन्त में सर्वत्र।

(क) गा०य०अवे० दएव=सं० देव। (ख) गा०य०अवे० मे (मुझे)। (ग) गा० यज़इते= य० यज़इतॅ। गा० अरमइते (हे अरमते)। इस जैसा अवे० में सूरॅ हे शूर स्त्री।

अवे० ऑ

३२—अवे० ऑ प्रयुक्त होता है—

(क) सं० ओ के स्थान बाहुल्य से अवे० में सन्ध्यक्षर अऑ प्रयुक्त होता है।

सं० ओजस्=अवे० अऑजो।

(ख) कभी २ सं० अ के स्थान प्रयुक्त होता है जब उ (ओष्ठ्य) से पूर्व हो।

सं० वसु अवे० वॉहु (भला)। सं० मक्षु=अवे० मॉषु (शीघ्र)।

अवे० ओ

३३—अवे० ओ (क) प्रायः सं० अ, आ के स्थान आता है जब परला अक्षर उ, ऊ, ओ, व् (ओष्ठ्य स्वर) वाला हो (ख) कभी २ र् व्यञ्जन से पूर्व भी आता है।

अवे० दामोहु=सं० धामसु (लोकों में)। गा० अवे० गूषोदूम्=सं० घोषध्वम् (सुनो)। गा० अवे० वख़्षोह्वा=सं० भक्षस्व (भागी बन)। अवे० वीदोतुश्=सं० विधातुस् (बांटने वाले का)। (ख) गा० अवे० कोरॅत्=सं० अकः (अकर्त् से)। गा० अवे० यातोयोतु=सं० यातयतु। यहां तु के प्रभाव से य=यो, और यो के प्रभाव से त=तो हुआ है।

३४—संस्कृत अन्त्य अस् अवे० में (प्राकृतों की नाईं) ओ आता है—

सं० नस्=अवे० नो (हमारा)। सं० वस्=अवे० वो (तुम्हारा)।

३५—अवे० ओ कहीं सं० औ का प्रतिनिधि भी है अवे० गरो=सं० गिरौ (पहाड़ पर)।

अवे० आ̲=सं० आस् वा आ

३६—संस्कृत अन्त्य आस् का प्रतिनिधि अवे० में आ̲ होता है—

सं० सेनायाः=अवे० हएनया̲ (सेना का)। सं० भूयाः=अवे० बुया̲ (तू हो)।

३७—न्त् से पूर्व संस्कृत आ अवे० में आ̲ बोला जाता है।

सं० महान्तम्=अवे० मज़ा̲ंतम्। सं० पान्तस्=अवे० पा̲ंतो (रक्षा करता हुआ)।

अवे० आँ (=अँ, आँ)=सं० अ, आ।

३८—अवे० 'आँ' न्, म् से पूर्व सं० अ, आ का प्रतिनिधि होता है।

अवे० हाँम् (साथ, इकट्ठा)=सं० सम् । अवे० माँम् (मुझे)=सं० माम्। अवे० दएवाँन् (देवों को)=सं० देवान्।

३९ - अवे० 'आँ' बहुधा सानुनासिक अ (वा आ) का प्रतिनिधि होता है जब परे ऊष्मा वा सप्राण हो।

अवे० अपाँश् (पीछे को)=सं० अपाङ्। गा० अवे० माँस्ता (उस ने सोचा)= सं० अमँस्त । अवे० आँसया=सं० अंशयोः (दो भागों का)। अवे० बाँज़इति (वह सहायता करता है)=सं० बंहते। अवे० माँथ्रॅम्=सं० मन्त्रम्।

अवे० ॲरॅ=सं० ऋ

४०—सं० ऋ=अवे० ॲरॅ है। उच्चारण वैदिक ऋ और आवेस्तिक ॲरॅ का समान है। वैदिक ऋ दो स्वरभक्तियों के मध्य में र् श्रुति है, ठीक ऐसे ही अवे० में उसके स्थान ॲरॅ दो स्वरभक्तियों ॲॲ के मध्य में र् लिखा जाता है। अतएव अवे० ॲरॅ= सं० ऋ है। सं० कृणोति (करता हूं)=अवे० कॅरॅनओइति। सं० मृत्युम्=अवे० मॅरॅथ्युश्। सं० सकृत् (एकवार)=अवे० हकॅरॅत्।

टि०—सं० ऋ के स्थान अवे० में कहीं अरॅ भी प्रयुक्त होता है, उस की प्रतिलिपि हम ने अरॅ से की है।

सं० अनृतैस् (झूठों से)=अवे० अनरॅतैश् । सं० वृक्षम्=अवे० वरॅषॅम् । सं० ऋष्टिस्=अवे० अर्श्तिश् (भाला)।

४१—सं० इर्, उर् वा ईर्, ऊर्=अवे० अर्, ॲर्, अरॅ, ॲरॅ, अइर्, अउर्

सं० हिरण्यस्य=अवे० ज़रन्यॅहॅ (सोने का)। सं० गिरिम्=अवे० गइरिश् (पहाड़) सं० आसुर=अवे० आहुरॅ=गा० आहुर (वे थे)। सं० दीर्घम्=अवे० दरॅगॅम् (लम्बा)। तथा सं० र, ऋ कभी अवे० में ॲरॅ र होते हैं। सं० रजतम्=अवे० ॲरॅज़तॅम्। सं० ऋतु= अवे० रतु।

स्वरयोग वा अव्यवहित स्वर

४२—साधारण विवरण—संस्कृत में जो 'ए, ओ, ऐ, औ' सन्ध्यक्षर माने गए हैं। ये मूल में दो दो स्वरों के प्रतिनिधि हैं—'ए=अइ, ओ=अउ, ऐ=आइ, औ=आउ' इन को छोड़ कर संस्कृत एक पद में दो स्वर इकट्ठे नहीं आते (बिना 'तितउ' के)। इन चारों में भी 'ए ओ' तो अब एक दीर्घ स्वर की नाईं उच्चरित होते हैं। हां 'ऐ, औ'=अइ, अउ इस प्रकार द्विस्वरवत् उच्चरित होते हैं, पर अवेस्ता में व्यञ्जनों के संयोग की तरह

स्वरयोग भी बहुत पाया जाता है। अवेस्ता का स्वरयोग प्रवृत्ति, निवृत्ति, भक्ति, त्राति भेद से चार प्रकार का है।

प्रवृत्तिस्वरयोग

अवे० अए, ओइ—अओ, अउ—आइ, आउ

४३—प्रवृत्ति स्वरयोग संस्कृत के 'ए, ओ, ऐ, औ' इन चार सन्ध्यक्षरों का प्रतिनिधि है। इस में संस्कृत और अवेस्ता का मेल इस प्रकार है।

(क) संस्कृत ए के स्थान अवेस्ता में आता है—

(१) प्रधानतया अए (२) कहीं ओइ (३) और अवसान में नियमतः ए।

(ख) संस्कृत ओ के स्थान अवेस्ता में आता है—

(१) प्रधानतया अओ (२) कहीं अउ (३) और अवसान में नियमतः ओ।

(३) संस्कृत 'ऐ, औ' के स्थान अवेस्ता में नियमतः आइ, आउ आते हैं।

अवे० अए=सं० ए

४४—अवे० स्वरयोग अए (जो बहुत प्रयुक्त है) आदि और मध्य में, तथा समास के पूर्वपद की विभक्ति में वा निपात 'च' से पूर्व, संस्कृत ए का स्थान लेता है।

सं० एतत्=अवे० अएतत् (यह)। सं०वेद=गा० अवे० वएदा=य० अवे० वएद= (वह जानता है)। सं० प्रेष्यति=अवे० फ्रएष्येइति (भेजता है)। सं० दूरेदृश् (दूर देखने वाला) अवे० दूरएदर्स। अवे० रथएश्तारॅम (रथ पर स्थित होने वाला) इस समस्त पद में 'रथए' समास का पूर्वावयव सप्तम्यन्त है। जैसे सं० में 'रथेष्ठा' में है।

अवे० ओइ=सं० ए

४५—अवे० ओइ सं० ए का स्थान लेता है (कहीं अए, से विकल्पित होता है)। इस का प्रयोग (क) एकाक्षर शब्दों में, (ख) विभक्ति में, और (ग) विशेषतया गा० अवे० में होता है।

(क) सं० ये (जो)=गा० य०,अवे० योइ (साथ ही-यएच)। सं० के (कौन) गा० य०अवे०कोइ। (ख) अवे० मइयोइपइतिश्तान (=सं० मध्येप्रतिष्ठानम् पाओं के मध्य में) सं० अहेः (सर्प का)=य० अवे० अज़ोइश्। सं० भूरेः=गा० य० अवे० बूरोइश्। सं० भरेत=गा० य० अवे० बरोइत्। सं० गवे=गा० अवे० गवोइ। य० अवे० गवॅ। सं० शेरे=य० अवे० सोइरे (वे लेटते हैं)। (ग) सं० वेत्य=गा० अवे० वोइस्ता

अवे० अओ=सं० ओ

४६—पद के आदि मध्य में संस्कृत ओ के स्थान अवेस्ता में अओ आता है।

सं० ओजस् (बल)=अवे० अओजो। सं० रोहन्ति (वे उगते हैं)=अवे०

रओंदंति । सं० तायोस (चोर का)=अवे० तायओश् । सं० प्रोक्तस् (कहा गया)= अवे० फ़्रओख़्तो (फ़्र+उ०)।

अवे० अउ=सं० ओ

४७—अवे० अउ मध्य में सं० ओ के स्थान आता है ।

सं० क्रतोस् (ज्ञान का)=अवे० ख़्रतउश् (प्रज्ञा का)। सं० वसोस्=अवे० वङ्हउश् (भलाई का) । समास में भी-अवे० दुउश-स्रवा (=सं० दुःश्रवस् (खोटे यश वाला)। सं० घोषैस् (कालों से) अवे० गउषाइश ।

अवे० आइ=सं० ऐ, अवे० आउ=सं० औ

४८—सं० ऐ औ (जो मूल में आइ, आउ है) अवे० में आइ, आउ लिखे जाते हैं।
सं० मन्त्रैस् (मन्त्रों से)=अवे० मॉंथ्राइश् । सं० गौस्=अवे० गाउश् ।

गुण वृद्धि

४९—गुण और वृद्धि अवेस्ता में संस्कृत की नाईं दो रूपों में प्रयुक्त होते हैं। स्वर पर बल देने में, और अ आ के साथ असमान स्वरों की सन्धि में ।

अ को वृद्धि

५०—अवेस्ता में अ को आ वृद्धि पाई जाती है। जैसे—अहुर (=सं० असुर) से आहुरि (प्रयोग ६।१ का आहुरोइश्) । वच् का वाच् (प्रयोग कर्मणिलुङ् १ । १ अवाचि= बोला गया)।

इई स्वर को गुण अए (अय्) ओइ (ओय्) एॅ, ए

५१—अवेस्ता में इई को गुण अए (स्वर से पूर्व अय्) ओइ (स्वर से पूर्व ओय्) और पदान्त में ए (गा० ए, य० एॅ) पाया जाता है।

अवे० दएसयॅन् (उन्हों ने दिखलाया) (दिस् से)। अवे० सएतॅ (=सं० शेते-वह लेटता है) और सोइरॅ (वे लेटते हैं) (सी से)। ख़्षयेहॅ (तू शासन करता है-ख़्षि से)। वीदोयूम (देवों के विरुद्ध) (वीदएव से २ । १)

सन्धि में-उप+इत=उपएत (पा लिया) । ख़्षय्+इ=य० अवे० ख़्षयॅ। गा० अवे० ख़्षथ्रोइ (शासन में) । उपोइसयॅन्=उप+इस० (वे ढूंढें) । वृद्धि—अवे० दाइश् (दी से)। स्त्रओमायो (स्त्रओमि से) थ्रायो (थ्रि से) । सन्धि उप+इति=उपाइति।

५२—उऊ को गुण अओ (स्वर से पूर्व अव्) अउ,ओ;और वृद्धि—आउ (स्वर से पूर्व आव्)।

गुण—अवे० हओमॅम (हु से)। ज़ओतारॅम् (जु से) । स्तओमि (मैं स्तुति करता हूं) स्तवनो (स्तुति करता हुआ) (स्तु से)। वङ्हवे, वङ्हउश् (वङ्हु से ४।१ और ६।१)।

सन्धि में = फ्र+उक्तो=फ्रओक्तो (=सं० प्रोक्तः-कहा गया)। वओचत् (=सं० वोचत्-कहा गया)। वृद्धि—गा० अवे० स्रावी (उस ने सुना-स्रु से)। वङ्हाउ (सं० वसौ=भलाई में)।

५३—ऋ (ॲरॅ) को गुण-अरॅ (अर्) वृद्धि-आरॅ (आर्)

कृ काटना से गुण हो कर—कॅरॅतॅम (कर्द)। वृद्धि हो कर कारयेइति (काटता है)। अवे० वृथ्रघ्न से वारथ्रघ्नि।

टि० संस्कृत में जहां गुण है, वहां अवेस्ता में कहीं वृद्धि पाई जाती है और जहां वृद्धि है वहां गुण पाया जाता है

निवृत्तिस्वरयोग

य्, व् और य, व को इ, उ

५४—साधारण विवरण—य,व की जो स्वर प्रकृति है, उससे वेद में य्,व् को कहीं अक्षररूप में इ,उ वा इय्,उव् बोला जाता है। और कहीं य व को संप्रसारण हो जाता है। अवेस्ता में इन दोनों का फैलाव बहुत है।

५५—अवे० में मौलिक व्य्, व्न्, व्र, ग्व् के आदि वर्ण को उ, इ हो जाता है। अब यदि इनसे पूर्व कोई स्वर हो तो स्वरयोग होता है। 'उ' से पूर्व अ हो तो दोनों के स्थान 'अ ओ' गुण होता है। सो—

अव्य्=अओय्, अव्न्=अओन्, (आवन्=आउन्), अव्र्=अओर् होता है।

सं० सव्यम=अवे० हओयाँम (बायां)। सं० गव्यूतीस=अवे० गओयओइतीश् (चरागाहों को)। अषओनो (अषवन्=सं० ऋतावन् से)। सं० ऋतावने=गा०अवे० अषाउने (सदाचरी को) अवे० फ्रओइरिसइति (=फ्रविस्-अइति)।

टि० मूल भू=अवे० वू=व् को भी उ वा अ पूर्वक अओ के उदाहरण मिलते हैं।

सं० अदभ्यस (जिस को कोई धोखा न दे सके)=अवे० अद्व्यो=अदव्यो=अदओयो। सं० अभि=अवे० अइवि=अवि=अओइ।

५६—सम्प्रसारण—म्, न् से पूर्व अवे० का अय=अइ हो कर गुण अए, अव=अउ हो कर गुण अओ होता है।

सं० अयम्=अवे० अएम् । सं० विधारयम्=अवे० वीदारएम (मैंने धारण किया)। सं० यवम्=अवे० यओम्। सं० अब्रवम् (मैंने कहा)=अवे० मरओम । सं० नवमस् (नवां)=अवे० नाउमो वा नओमो । सं० कृणवन् (उन्हों ने बनाया)= अवे० कृनाउन् वा कृनओन् । सं० अभवन् (वे थे)=अवे० बाउन् वा बओन् ।

५७—सम्प्रसारण—म्, न् से पूर्व अवे० का आय=आइ और आव=आउ हो जाता है ।

सं० गायम्=अवे० गाइम (पैर)। सं० अवायन् (वे नीचे गए)=अवे० अवाइन् । अवे० नसाउम (अर्थात् नसावम)।

५८—अवे० का अन्त्य अये=अएॅ हो जाता है। सो—

सं० गतये=अवे० गतएॅ। सं० पनये=अवे० पनएॅ।

भक्तिस्वरयोग

५९—साधारणविवरण—वेद में स्वरभक्ति बोली जाती है, लिखी नहीं जाती, और उस का प्रयोगस्थल भी केवल संयुक्त वर्ण होते हैं । अवेस्ता में स्वरभक्ति जैसे बोली जाती है, वैसे लिखी भी जाती है । और प्रयोगविषय इस का वेद से बहुत अधिक है । अवेस्ता में यह तीन प्रकार की मानी गई है । सौवरी, वैयञ्जनी और सांयौगिकी ।

सौवरी स्वरभक्ति-इ,उ

६०—सौवरी—यह अवेस्ता की एक विशेष स्वरभक्ति है। यह एक हलका सा इ, उ का आगम है। (क) जब त्, द्, न्, प्, ब्, व्, र् और ङ्ह (=सं० स्य) वर्ण इ, ई, एॅ, ए, य् अन्त वाले हों तो इन से पूर्व इ का आगम होता है,(ख) और र् जब उ,व् अन्त वाला हो तो उस से पूर्व उ का आगम होता है।

(क) सं० भवति (होता है)=अवे० बवइति । सं० एति (जाता है)=गा० अवे० अपइती=य०अवे० अपइति । सं० राती (दात के साथ) गा०अवे० राइती । सं० भरन्ति= (वे ले आते हैं)=अवे० बरइन्ति । सं० भ्रियन्ते (वे ले आते हैं)=अवे० बइर्येइन्ते । सं० मध्यम=अवे० मइद्गीम् । सं० अर्यस्=अवे० अइर्यो । सं० अस्याः=अवे० अइङ्हा ।

(ख) सं० अरुण=अवे० अउरुन । सं० अरुषस् (श्वेत)=अवे० अउरुषो । सं० पर्वतौ (दो पर्वत)=अवे० पउर्वत ।

वैयञ्जनी स्वरभक्ति-इ, उ, ऍ, अ

६१—वैयञ्जनी स्वरभक्ति वह है जो व्यञ्जन के प्रभाव से आदि वा अन्त में आती है।

(क) आदि रि से पूर्व इ, आदि रु वा वं से पूर्व उ आता है श् से पूर्व भी इ के उदाहरण पाए जाते हैं। (ख) अन्त्य र् से परे अॅ (गा० में अ) आता है।

(क) सं० रिणक्ति (हांकता है)=अवे० इरिनख़्ति। सं० रोपयन्ति=गा० उरूपयेइन्ती। श् से पूर्व—सं० त्यजस्=अवे० इथ्येंजो। (ख) सं० अन्तर्=य० अवे अन्तर्रॅ (गा० अन्तर)।

सांयौगिकी स्वरभक्ति-अॅ अ, इ, ओ।

६२—सांयौगिकी स्वरभक्ति संयोग के बीच में काचित्क, विशेषतः र् के संयोग में, आती है यह साधारणतः अॅ है। बहुत थोड़ा अ, इ, ओ आती है।

अॅ—सं० वक्त्र=अवे० वख़्ॅद्र। सं० ज्मस् (भूमिका)=अवे० ज़ॅमो। सं० दद्मसि (हम देते हैं)=गा० अवे० दॅदॅमही। सं० घर्मस् (गर्म)=अवे० गॅरॅमो। सं० प्र=गा० अवे० फॅरा।

अ—सं० मर्क=गा० अवे० मरक (आ० फा० मर्ग=मौत)। इ—सं० यव्ही = गा० अवे० येॅज़िवी। ओ—सं० सव्य (बायाँ)=य० अवे० हावोय।

आतिस्वरयोग आअ

६३—अवेस्ता का विशेष स्वरयोग अ, आ की लटक आअ है, जो च से पूर्व पञ्चम्येक वचन आत् वा निपात आत् के आ की होती है।

अवे० दएवाअत्च। वाअत्।

व्यञ्जनों की तुलना

६४—व्यञ्जनों की तुलना में मोटी बातें ये हैं (१) अवे० में वर्ग्य व्यञ्जनों में तालव्य केवल दो ही हैं च् और ज्। (२) मूर्धन्य अवे० में नहीं हैं, संस्कृत मूर्धन्यों के स्थान अवे० में प्रायः तालव्य बोले जाते हैं (३) सं० महाप्राणों के स्थान अवे० में प्रायः सप्राण बोले जाते हैं। (४) अनुनासिक सर्वांश में संस्कृत के समान नहीं। (५) अवेस्ता के ऊष्मा संस्कृत से अधिक हैं। सघोष ऊष्मा ज़्, ज़् संस्कृत में नहीं हैं। व्यञ्जनों का सविस्तर वर्णन न करके स्मरण रखने के लिए संक्षिप्त तुलना सारे वर्णों की नीचे देते हैं।

वर्णप्रयोग में संस्कृत और अवेस्ता की संक्षिप्त तुलना

सं० अ, आ, इ, ई, उ, ऊ=अवे० अ, आ, इ, ई, उ, ऊ

१—अवेस्ता के अ आ, इ ई, उ ऊ (क) प्रायेण संस्कृत के पूरे संवादी हैं। सं० अस्ति= अवे० अस्ति (है)। सं० मातरस्=अवे० मातरो (माताएं)। सं० चित्तिस्=अवे०

चिस्तिश् (चेतना, समझ)। सं० जीव्याम=अवे० जीव्यॉम (२ । १ स्त्री जीती हुई को, ताज़ी को)। सं० उत=अवे० उत (भी)। सं० भूमिम्=अवे० बूमीम् (भूमि को)। पर—

सं० अ, आ, इ, ई, उ, ऊ=अवे० आ, अ, ई, इ, ऊ, उ

(ख) कहीं कहीं रूप में संवादी हो कर भी परिमाण में विसंवादी हैं, अर्थात् ह्रस्व के स्थान दीर्घ और दीर्घ के स्थान ह्रस्व हैं। सं० यतरस्=अवे० यतारो (जौनसा)। सं० नाना=अवे० नना (भाँति भाँति से)। सं० वितस्तिम्=अवे० वीतस्तीम् (बालिश्त)। सं० ईशानम=अवे० इसानॅम (शासन करते हुए को)। सं० युष्माकम=अवे० यूष्माकम (तुम्हारा)। सं० तनूनाम=अवे० तनुनाँम (शरीरों का)।

२—(क) अन्त्यस्वर गा० अवे० में दीर्घ हो जाते हैं—सं० उत=गा०अवे० उता, पर य० अवे० उत (भी)। सं० असि=गा अवे० अही, पर य०अवे० अहि (तू है)। सं० येषु=गा० अवे० यएषू (जिन में)।

(ख) य० अवे० में एकाक्षर के अन्त्य स्वर तो गा० अवे० की नाईं दीर्घ हो जाते हैं, पर अनेकाक्षर के अन्त्य स्वर (सिवाय ओ के) दीर्घ भी ह्रस्व हो जाते हैं।

सं० प्र=य०अवे० फ्रा (आगे)। सं० नि=य०अवे० नी (नीचे)। सं० नु=य० अवे० नू (अब)। पर—सं० पिता=य अवे० पित (पिता)। सं० नारी=य अवे० *ना रि। सं० ऋजू=य अवे० ऋ़ज़ु (दो अंगुलियां)।

३—अन्त्य ' म् ' से पूर्व इ, उ दीर्घ हो जाते हैं।

सं० पतिम्=अवे० प तीम् (पति को)। सं० पितुम=अवे० पितूम् (आहार को)।

अवे० ॲ=सं० अ

४—आवेस्तिक ॲ संस्कृत 'अ' का परिष्कृतरूप है, जो (क) अन्त्य न्, म् से पूर्व नियमतः, (ख) अनन्त्य न्, म् से पूर्व बहुधा और (ग) कहीं ' व् ' से पूर्व भी प्रयुक्त होता है।

(क) सं० अविन्दन्=अवे० विन्दॅन् (उन्होंने ढूंढ पाया)। सं० सन्तम=अवे० हॅंतम। (ख) सं० उपमम=अवे० उपॅमॅम वा उपमॅम (सब से ऊंचे को)। सं० शविष्ठ=अवे० सॅविश्त (बहुत बड़ा बलवान्)।

५—सं० अ=अवे० ॲ पूर्ववर्ती च्, ज्, य्, ज़् (तालव्य) के प्रभाव से कहीं इ (तालव्य) हो जाता है।

---

* यहां हम पहचान के लिए स्वरभक्तियों को मात्रारूप में अलग लिखेंगे जैसे ना रि प तीम में ि=इ स्वरभक्ति है।

सं० वाचम्=अवे० वाचॅम् धा वाचिम (वाणी को)। सं० भाजन=अवे० बज़िन (बर्तन)। सं० यम्=अवे० यिम् (जिस को)। अवे० द्रज़ॅम्नो वा द्रुज़िम्नो।

६—आवेस्तिक अ, ॲ का समान दीर्घ है। इसका प्रयोग (क) गा०अवे० में विशेष है, जो य०अवे० के ॲ, अ के स्थान बहुधा और कहीं ओ, ऑ के स्थान भी है। (ख) य० अवे० में इस का प्रयोग बहुत थोड़ा है। और जो है वह गा० अवे० का अनुसरण प्रतीत होता है, न कि किसी नियम का अनुसरण।

(क) सं० अहम्=य० अवे० अज़ॅम् गा० अवे० अज़म्। (मैं)। सं० अमवन्तम्=य० अवे० अमॅवंतम=गा० अवे० अमवंतॅम् (बल वाले को)। सं० यस्=य० अवे० यो=गा० अवे० य। सं० समम=य० अवे० हॉम=गा० अवे० हम। (ख) य० गा० अवे० स्पनिष्ठ (पवित्रतम)।

अवे० ॲरॅ वा अरॅ=सं० ऋ

७ - आवेस्तिक ॲरॅ और काचित्क अरॅ संस्कृत ऋ का प्रतिनिधि है।

सं० सकृत्=अवे० हकॅरॅत्=हकृत् (एक वार)। सं० अनृतैस्=अवे० अनरॅताइश्। प्रातिशाख्यों में वैदिक ऋ का उच्चारण दो स्वरभक्तियों के मध्य में र् श्रुति माना है अवे० में ऋ=ॲरॅ वा अरॅ इस प्रकार दो स्वरों (=स्वर भक्तियों) के मध्य में लिखा जाता है। यद्यपि अवे० के ॲरॅ और अरॅ ये दोनों ऋ स्थानी हैं, तथापि अवेस्ता की लिपि की संस्कृत प्रतिलिपि को पूरा विस्पष्ट रखने के लिए हम ने ॲरॅ की प्रतिलिपि ऋ और अरॅ की प्रतिलिपि अरॅ ही रक्खी है। सो यहां मॅरॅध्युश् आदि की संस्कृत प्रतिलिपि मृध्युश् आदि और अनरॅतैश् आदि की संस्कृत प्रतिलिपि अनरॅतैश् आदि होगी।

टि—संस्कृत इर्, उर् (ऋ स्थानी), और ईर्, ऊर् (दीर्घ ऋ स्थानी) के स्थान अवेस्ता में कहीं अर्, ॲर् वा अॅर; ऋ भी पाए जाते हैं।

सं० हिरण्यस्य=अवे० ज़रन्यॅहे (सोनेका)। सं० गिरिस्=अवे० गरिश (पहाड़)। सं० आसुर्=अवे० आङ्हूरॅ (गा० अवे० आङ्हर)। (वे थे)। संस्कृत तुर्व् तूर्व् का आवेस्तिक त,वॅर्यॅ ति। सं०दीर्घम=अवे० दरॅगम (लम्बेको)।

टि० कहीं सं० र=अवे० ऋ और सं०ऋ=अवे० र पाया जाता है सं० रजतम्=अवे० ऋजतम् (चांदी) स० ऋतु=अवे० रतु।

अवे० ऍ=सं० अ, आ

८—संस्कृत य, या का अ, आ अवेस्ता में ऍ उच्चरित होता है यदि परला अक्षर इ, ई, ऍ, ए वा य् स्वर वाला हो।

सं० रोचयति (चमकता है)=अवे० रओचयॅति। सं० अयानि (मैं जाऊँ)=

य० अवे० अर्यॅ नि=गा० अवे० अर्यॅ नी। सं० यज्ञे=य०अवे० येॅस्ने=गा० अवे० येॅस्ने। सं० यस्याः=य० अवे० येॅङ्हा (जिस का)।

९—संस्कृत पदान्त्य 'य' य० अवे० में यॅ हो जाता है (और गा० अवे० में या हो जाता है)।

सं० कस्य=य० अवे० कहॅ (गा० अवे० कह्या)। सं० गयस्य=य०अवे० गयॅहॅ= (गा० अवे० गयॅह्या)।

संस्कृत अन्त्य ए=य० अवे० एॅ

टि० सं० अन्त्य ए, य० अवे में एँ हो जाता है (देखो० २ ख)

अवे० ए

१०—संस्कृत ए (१) गा० अवे० में अन्त में सर्वत्र ए रहता है (२) य० अवे० में केवल एकाक्षर के अन्त में ए रहता है (३) आदि मध्य में गा० य० अवेस्ता दोनों में प्रायेण अए (४) कहीं ओइ होता है।

(१) सं० यजते=गा०अवे० यज़ॅते (य०अवे० यज़ॅते) (२) सं० मे=गा०य०अवे० मे (३) सं० एतत्= गा०य०अवे० अएतत्। सं० देव=गा०य०अवे० दएव (४) सं० ये= =गा य०अवे० योइ। सं० के=गा० य० अवे० कोइ।

अवे० अॅ

११—(१) संस्कृत का आद्य और मध्य ओ अवेस्ता में अओॅ हो जाता है—

सं० ओजस्=अवे० अओॅज़ो (बल)। सं० तायोस् (चोर का)=अवे० तायओॅश्।

(२) सं० अ=अवे० ओॅ होता है जब परला अक्षर उ वाला हो। सं० वसु= अवे० वोॅहु।

अवे० ओ

१२—(१) अन्त्य सं० अस्=अवे० ओ है। सं० पुत्रस्=अवे० पुथ्रो। सं० इषवस्= अवे० इषवो (बाण)। सं० धारयस् (उस ने धारण किया)=अवे० दारयो।

संस्कृत में अन्त्य अस् को 'ओ' की सन्धि बहुत पाई जाती है (पुत्रो, इषवो, धारयो इत्यादि)। सो रूप बाहुल्य से अवेस्ता और प्राकृत दोनों में यह सामान्यरूप बन गया है। अवेस्ता में 'च' से पूर्व यह अपने मूलरूप में प्रयुक्त होता है-इषवस्च।

अवे० आ=सं० आस्,

१३—संस्कृत अन्त्य आस् अवेस्ता में नियमतः आ हो जाता है।

सं० भूयाः (होजा)=अवे० बुया । सं० सेनायाः (सेना का)=अवे० हएनया ।

टि० संश्लिष्टक ' च ' से पूर्व आस् होता है । सं० गाथास्च=अवे० गाथास्च

अवे० आ=सं० आ

१४—संस्कृत न्त् से पूर्व ' आ ' अवेस्ता में आ हो जाता है।।

सं० महान्तम (बड़े को)=अवे० मज़ांतम ।

टि० सं० न्यञ्चम्=अवे० न्याचिम् ।

अवे० आँ=सं० अ, आ वा अ, आ+– वा अनुनासिक हैं ।

१५—न्, म् से पूर्व 'अ, आ' अवेस्ता में आँ हो जाते हैं ।

सं० सम्=अवे० हाँम (इकट्ठा) । सं० माम=अवे० माँम (मुझे)। सं० अयन्= अवे० अयाँन् (वे जायें) । सं० देवान्=अवे० दएवाँन् (देओं को) ।

१६—ऊष्मा वा सप्राण से पूर्व सानुस्वार वा सानुनासिक 'अ, आ' अवेस्ता में आँ हो जाते हैं ।

सं० अमंस्त=गा० अवे० माँस्ता । सं० अंशयोः=अवे० आँसया (दो अंशो का) । सं० अँहम्=अवे० आँज़ो (पाप, विनाश) । सं० मन्त्रम=अवे० माँथ्रॅम् ।

ए, ओ, ऐ, औ

१७—(१) सं० ए अवेस्ता में आदि और मध्य में बहुधा अए और कभी ओइ हो कर प्रयुक्त होता है (पूर्व १० । ३-४) । सं० एतत्=अवे० अएतत् । सं० वेद= गा० अवे० वएदा, य० अवे० वएद । सं० ये=अवे० योइ (२) सं० ओ आदि और मध्य में बहुधा अओ (पूर्व ११ । २) और कभी अउ हो कर प्रयुक्त होता है—सं० ओजस्=अवे० अओजो सं० प्रोक्तस्=फ्रओख्तो (कहा गया) । सं० क्रतोस्=अवे० ख़्रतउश् (३) सं० ऐ, औ अवे० में आइ, आउ हो कर प्रयुक्तहोते हैं । सं० मन्त्रैस्= अवे० माँथ्राइश् । सं० गौस्=अवे० गाउश् ।

य्, व् के स्वर प्रकृति होने का फल इ, उ

१८—(क) य्, व् की जो स्वर की प्रकृति है, इस से अवे० में इन को बहुधा इ, उ हो जाते हैं (ख) अब इस इ, उ से पूर्व यदि अ, आ हो, तो अय्=अइ, और अव्=अउ हो कर सन्धि से अओ, और आव्=आउ सन्ध्यक्षर बन जाते हैं ।

(क) ण्व्=इव और व्य्=उय् हो कर–अवे० मनिवा (=मन्ण्वा है) । सं० वसव्यास्=अवे० वङ्हुया (भली का) । (ख) और अव्य्=अओइ , अव्न्=अओन्

आवन्=आउन् और अव्र=अओ़र् हो कर—सं० सव्यम्=अवे० हओ़याँम् (बाएँ को)। अवे० अषओ़नो (अषवन् से) । गा० अवे० अषाउने=सं० ऋताव्ने (अषावन् से)। अवे० फ़्रओ़रिसर्ति (=फ़्रव्रिस्-अर्ति, के स्थान)।

सम्प्रसारण-अक्षर य, व=इ, उ

१९—(क) न्,म् से पूर्व, विशेषतः अन्त्य न्,म् से पूर्व अवेस्ता में य,व अक्षरों को बहुधा सम्प्रसारण इ, उ वा ई, ऊ हो जाता है। (ख) अब यदि इस इ, उ से पूर्व अ हो तो सन्धि होकर अए,और अओ़ वा आउ; और आ हो तो आइ, आउ सन्ध्यक्षर हो जाते हैं। (ग) और यदि पूर्व गुण वृद्धि हों, तो त्रिस्वरी हो जाती है।

(क) सं० हिरण्यम्=अवे० ज़रनिम् (सोने को)। सं० तमस्वन्तम्=अवे० तॅमङ्हुंतॅम् (अन्धेरे वाले को)।

सन्ध्यक्षर—(ख) सं० अयम्=अवे० अएम् (यह)। सं० यवम्=अवे० यओ़म् (जौ को)। सं० अभवन्=अवे० बओ़न् वा बाउन्। सं० अवायन्=अवे० अवाइन्। नसाउन् (नसावन् से)। (ग) देवम्=अवे० (दएवम् से) दएऊम्।

टि० अन्त्य अये अवे० में अ ऍ हो जाता है—सं० गतये=अवे० गतऍ।

संयुक्त य् व्=इय्, उव्=अवे० इइ, उउ

२०—संयुक्त य्,व् जो छन्दतः इय्, उव् रूप में उच्चरित होते हैं, अवेस्ता में इइ,उउ लिखे जाते हैं, उन की नागरी प्रतिलिपि हम ने य् व् रक्खी है। सं० प्रियस्=अवे० फ्र्यो),अवे० में फ्रिइओ लिखा जाता है)और संस्कृत सुवचसम्=अवे० ह्वचङ्हॅम्।(अवे० हुउअचङ्हॅम् लिखा जाता है)।

स्वरभक्ति

२१—अवेस्ता में तीन प्रकार की स्वरभक्ति है। सौवरी, वैयञ्जनी, और सांयौगिकी।

(क) जब पर अक्षर इ, ई, ऍ, ए, य् वाला हो तो र्, त, न्, न्त, थ्, ध्, द्, प्, ब्, व् और (स्यस्थानी) ङ्ह से पूर्व इ स्वरभक्ति और (ख) परला स्वर उ, व् वाला हो तो र् से पूर्व उ स्वरभक्ति आजाती है। अवेस्ता में इस सौवरी स्वरभक्ति से पूर्व यदि स्वर हो तो दो स्वरों का योग, और दो स्वर हों तो तीन स्वरों का योग होता है।

(क) सं० भवति=अवे० बवइति। सं० एति=अवे० अएइति। (ख) सं० अरुषस्= अवे० अउरुषो (चमकदार)।

२२—(क) वैयञ्जनी स्वरभक्ति इ वा उ पदादि र् और अत्यल्प य् के आदि में आती है,जब परे इ,उ,व् हों।(ख) और अन्त्य र् के अन्त्य में अॅ वा अ रूप में आती है।

सं० रिणक्ति=अवे० िरिनख्ति। सं० रोपयन्ति=अवे० रूपयें ति। सं० त्यजस्=अवे० ि थ्यॅजो। यह स्वरभक्ति व्यञ्जन के आदि में आती है, इस लिए इस के आने से स्वरयोग नहीं होता।

(ख) सं० अन्तर्=य० अवे० अंतरॅ=गा० अवे०अंतर्।

२३—सांयौगिकी स्वरभक्ति बहुधा अॅ, कभी कभी अ, इ, ओ संयुक्त व्यञ्जनों के मध्य में आती है।

सं० ज्मस्=अवे० ज़ॅमो (पृथिवी का)। सं० मर्क=गा० अवे० मर्अक। सं० यह्वी=गा० अवे० येज़ॅ वी (युवति)। सं० सव्य=गा० अवे० हाओय (बायां)।

व्यञ्जनों की तुलना

२४—अवे० के वर्गाद्य क्, च्, त्, प् प्रायः संस्कृत से मेल रखते हैं।

सं० कतरस्=अवे० कतारो (दो में से कौन)। सं० चरति=अवे० चरॅति। (वह पूरा करता है)। सं० पतन्ति=अवे० पतँति (वे गिरते हैं)।

टि० कण्ठ्य और तालव्य क्, च् का अत्यल्प व्यत्यय भी है।

सं० पश्चात्=अवे० पस्कात् (पीछे से)। सं० चिकित्वान्=अवे० चिचिथ्वा (प्रज्ञावान् से)।

२५—अवे० के अघोष सप्राण ख़्, थ्, फ़् दो प्रकार के हैं। (१) एक तो वे जो महाप्राण ख्, थ्, फ् के प्रतिनिधि हैं (२) दूसरे संयोगविशेष के आदि क्,त,प् क्रमशः ख़्,थ्,फ़् हो जाते हैं।

(१) अवे० ख़्, थ्, फ़्=सं० ख्, थ्, फ्

सं० खास्=अवे० ख़ा (चश्मा)। सं० खरम्=अवे०ख़रॅम् (गधे को)। सं० सखा=अवे० हख़ (मित्र)। सं० गाथास्=अवे० गाथा। सं० सप्तथम्=अवे० हफ़्तथॅम (सातवें को)। सं० कफम=अवे० कफॅम्। सं० शफासस्=अवे० सफ़ाङ्हो (खुर)।

(२) अवे० ख़्, थ्, फ़्=सं० क्, त्, प्

सं० क्रतुस्=अवे०ख़्रतुश् (प्रज्ञा)। सं० रिणक्ति=अवे०िरिनख़्ति। सं० तोक्म अवे० तओख़्म (बीज)। सं० क्षत्रम=अवे० ख़्शथ्रम्। सं० सत्यस्=अवे० हॅथ्यो (सच्चा)। सं० प्रोक्तस्=अवे० फ़्रओख़्तो (कहा गया)। सं० प्र=य० अवे० फ़्रा=गा० अवे० फ़रा (आगे)।

टि० १—अवे० में कहीं आद्य या मध्य ष् से पूर्व ख् का आगम पाया जाता है—आख्ष्नुश् (गोडों तक) मिला० सं० अभिज्ञु ।

टि० २—अवे० 'स्' (=सं० श्) के स्थान कहीं थ् पाया जाता है । सं० शम् (शान्त होना)=अवे० थम् से थम्नोङ्हत । सं० शी=अवे० सी (लेटना) से-अ्विथ्यो (=सं० अभिशयः) (बहुत सोना) । अवे० अ्विथूरो (=सं० अभिशूरः)-(सम्मुख जाने वाला शूरवीर) ।

टि० ३—सं० थ्=अवे० थ्, अवे० में ख्, श् से परे द् हो जाता है । सं० उक्थ=अवे० उख्द् ।

२६—अपवाद—ऊष्मा और नासिक्य से परे क्,त्,प् के स्थान ख्, थ्, फ्, नहीं होते (ख) सं० ख्, थ्, फ् के स्थान भी यहां क्, त्, प् ही होते हैं ।

(क) अवे० उश्त्रॅम् (=सं० उष्ट्रम्-ऊंट) । ख़्रफ्स्त्राइश् (दुष्ट जीवों से) । ज़ंत्वो (वंश में) । (ख) सं० स्थूरम्=अवे० स्तओरॅम् (मोटे को) सं० स्खलन=अवे० स्करॅन । सं० पन्थानम्=अवे० पंतानॅम् ।

२७—अपवाद (क)-सं०प्त् अविकृत रहता है,पर क्त=ख्द् और प्त्=फ़्द् हो जाता है।

(क) सं० सप्त=अवे० हप्त (सात) । पर (ख) सं० योक्त=अवे० यओख्द्र (पेटी) । सं० नप्त्र=अवे० नफ़्द्र् हो जाता है ।

अवेस्ता त्

२८—त् अवे० में सप्राण अघोष है । आदि और मध्य में सघोष भी बोला जाता है ।

(क) यह अन्त्य त् के स्थान आता है । पर (ख) स् श् से परे त् आता है । (ग) आदि में अत्यल्प प्रयोग है । (घ) मध्य में कुछ थोड़ा सा प्रयोग वहीं है, जहां समास में पूर्वावयव के अन्त में आया है ।

(क) सं० अभवत्=अवे० बवत् (वह हुआ) । सं० यावत्=अवे० यवत् (जितना) । (ख) वोइद्त् (उसने वचन दिया) । अ्विमो इश्त् (वह उसकी ओर मुड़ा) । (ग) त्कएषम् (विश्वास, विश्वासी) । य अवे० त्बएषो=सं० द्वेषस् (द्वेष) (घ) अर्वत्-अस्प (तेज़ घोड़े वाला ।

अवे० ग्, द्, ब्=सं० ग्, द्, ब्, वा घ्, ध्, भ्

२९-(क) (१) सं० ग्,द्,ब् अवे० में ग्,द्,ब् हैं । (२) साथ ही सं० घ्,ध्,भ् भी अवे० में ग्, द्, ब् हो गए हैं, और वे गा०अवे० में तो ग्,द्,ब् बने रहे हैं । पर (ख) य०अवे० में ये दोनों प्रकार के ग्, द्, ब् आदि में ग्, द्, ब् टिके रहते हैं (ग) मध्य में भी नासिक्य और ऊष्मा से परले टिके रहते हैं (घ) अन्यत्र ये सप्राण ग़्, द़्, ब़् हो जाते हैं ।

(१) सो गा० अवे० ग्, द्, ब्=सं० ग्, द्, ब्

गा० अवे० उग्रंग्=सं० उग्रान् (उग्रों को)। गा० अवे० यदा=सं० यदा (जब)।

(२) गा० अवे० ग्, द्, ब्=सं० घ्, ध्, भ्

गा० अवे० दरॅगम्=सं० दीर्घम् (लंबा)। गा० अवे० अद्वानॅम्=सं० अध्वानम् (मार्ग को)। गा०अवे० अ॑बि=सं० अभि (सम्मुख)।

गा० अवे० में सप्राण ग़्, द्, व़् बहुत थोड़ा प्रयुक्त हुए हैं।

(ख) य० अवे० आद्य मूल ग्,द्,ब् य०अवे० गाँम्=गा०अवे० गाँम्=सं० गाम् (गौ को) य० अवे० दूरात् =गा० अवे० दूरात्=सं० दूरात्। य० अवे० बर्ज़िश्ते=गा० अवे० बरज़िश्ते=सं० बर्हिष्ठे (सब से ऊंचे पर)।

घ्, ध्, भ् से आए ग्, द्, ब् आदि में—य० अवे० गओषम्=सं० घोषम्। य० अवे० दारयत्=सं० धारयत् (उसने पकड़ा)। य० अवे० बंदॅम्=सं० बन्धम् (बन्ध को)।

(ग) पद मध्य में नासिक्य और ऊष्मा से परले दोनों प्रकार के ग्, द्, ब्= य० अवे० ग्, द्, ब्

अवे० अंगुश्त ब्य=सं० अंगुष्ठाभ्याम्। य० अवे० विंदाति=सं० विन्दाति (वह पाए)। अवे० ज़ॅगम=सं० जङ्गाम। य० अवे० दज़्दि=सं०दद्धि (तू दे)। य०अवे० ज़ॅम्बयद्वॅम्=सं० जम्भयध्वम्।

(घ) अन्यत्र दोनों प्रकार के ग्, द्, ब्=य० अवे० ग़्, द़्, व़्। य० अवे० उग्रॅम्=(गा० उग्र), मृगो=सं० उग्रम्, मृगस्। य० अवे० वीद्वा=सं० विद्वान्। य० अवे० मएगम्=सं० मेघम्। य० अवे० अद्=सं० अध। य०अवे० अ॑वि=(गा० अ॑वि) सं० अभि।

टि०१—मध्य द्र प्रायः अविकृत बना रहता है य० अवे० क्षुद्रात्=सं० क्षुद्रात्।

टि०२—ग्, द्, ब् को ग़्, द़्, व़् के कुछ अपवाद भी हैं।

टि० ३—मध्य द् के स्थान य० अवे० में कहीं थ् भी प्रयुक्त होता है विशेषतः उ,व् से पूर्व—य० अवे० वीथुषि, वीथुशीम्=सं० विदुषि, विदुषीम्। य० अवे० चरथ्वे=सं० चरध्वे।

टि० ४—मध्य व् य० अवे० में कहीं शुद्ध व् हो गया है।

सं० अभि=गा० अ॑बि=य० अवे० अ॑वि और अ॑वि।

सं० ज्=ज्, ज़्, ह्

३०-सं० ज् के स्थान अवे० में ज्, ज़् और ह् पाया जाता है।

(क) य० अवे० ज्वंतॅम्=सं० जीवन्तम् (जीते हुए को) अवे० तएज़म्=सं० तेजस्
अवे० जंतारॅम्=सं० हन्तारम् (मारने वाले को)।

टि० अवे० ज् कहीं सं० ग्, घ् का प्रतिनिधि भी है।

अर्धस्वर य् व्

३१–अवे० में य्, व् आदि में अपने रूप में, पर मध्य में इइ, उउ के रूप में लिखे जाते हैं। इन की प्रतिलिपि हमने य़्, व़् रक्खी है। आदि में जिस य्, व् का उच्चारण इय्, उव् होता है, वे इइ, उउ रूप में ही लिखे जाते हैं, उन की प्रतिलिपि भी य़्, व़् है।

अवे० य्=सं० य्

३२(क)–अवे० का आद्य और मध्य य् सं० का संवादी है। अवे० येज़्नम्=सं० यज्ञम्। अवे० तायउश्=सं० तायुस्। (ख) सं० व् जो अवे० में उ, ए के मध्य में आए य् हो जाता है। सं० द्वे=अवे० दुये। सं० भुवे=अवे० बुये।

अवे० व्

३३—अवे० का आद्य और मध्य व् सं० का संवादी है।

अवे० वातो=सं० वातस् (वायु)। अवे० हुस्पो=सं० स्वश्वस् (अच्छे घोड़े वाला)।

अवे० व् के स्थान भी कहीं व् हो गया है। सं० अभि=अवे० अ़वि=अ़वि।

संयुक्त व्

सं० त्व्=अवे० थ्व्

३४–सं० त्व् बहुधा अवे० में थ्व् हो जाता है (२) यदि पूर्व ऊष्मा हो तो नहीं होता।

सं० त्वाँम्= अवे० थ्वाम (तुझे)। जहां व् स्वर प्रकृति हो वहां नहीं होता–सं० त्वम्=गा० अवे० त्वम्=य० अवे० तूम। (२) वश्त्वं (किया जाना)

सं० द्व्, ध्व्

३५—सं० द्व, ध्व (१) जब आद्य हों तो गा० अवे० में द्व्, दब्, और य० अवे० त्व्, ब् (द्व्) (२) जब मध्य में हों, तो गा० अवे० में द्व्, य० अवे० द्व्, द्व् (द्व्) हो जाते हैं।

(१) आद्य—सं० द्वेषसा=गा० अवे० द्वएषङ्हा=य० अवे० त्वएषङ्ह (द्वेष से)।

सं० द्वितीयम=गा० अवे० दबितीम=य० अवे० बितीम्। सं० ध्वंसति=अवे० द्वंसइति।

(२) मध्य में—सं० विद्वान्=गा० अवे० वीद्वा=य० अवे० वीद्वा।

सं० अध्वानम=गा० अवे० अद्वानॅम्=य० अवे० अद्वानॅम्।

संं० श्व्=अवे० स्प्

३६—सं० अश्वस्=अवे० अस्पो । सं० श्वेतम्=अवे० स्पएतॅम ।

३७—सं० ह्=अवे० ज़्व

सं० ह्वयामि=अवे० ज़्बयॅमि (मैं बुलाता हूं) ।

सं० स्व के विकार स् के प्रकरण में देखो ।

अवे० र् (तरल) ।

३८—अवे० र्—सं० र्, ल् का प्रतिनिधि है । अवे० में ल् नहीं है ।

सं० रथम्=अवे० रथॅम । सं० श्रीरस् वाश्रीलस्=अवे० स्रीरो । सं० सुकृत= अवे० हुकृत ।

३९—क् वा प् से पूर्व सं० र् के स्थान अवे० में ह आता है ।

सं० मर्कस्=अवे० मह्रको (मृत्यु) । सं० कृपम्=अवे० कह्रपम् ।

ऊष्मा—स्, श्, ष्, श्, ज़्, ज़्

४०—ऊष्मा में स्,श्,ष्,श् अघोष हैं, ज़् ज़् सघोष हैं ।

अवे० स्

४१—अवे० स् तीन प्रकार का है । एक तो सं० स् का संवादी (२) दूसरा-सं० श् का प्रतिनिधि (३) तीसरा अवेस्ताजात ।

सं० स्=अवे० स्

४२—क् , च् त्, प् , न् से संयुक्त आद्य स्, और इन्हीं व्यञ्जनों से पूर्वला मध्य स् जब उस से पूर्व अ, आ, वा आँ हो, तो अवे० में स् बना रहता है । अन्यत्र ह् ङ्ह् हो जाता है ।

आद्य स् सं० स्कम्भम्=अवे० स्कम्बॅम (खंभे को) । सं० स्तोतारम्=अवे० स्तओतारॅम (स्तोता को) । सं० स्पर्धानि=गा०अवे० स्पृदानी (मैं स्पर्धा करूंगा) । सं० स्नायेत=अवे० स्नयएत (न्हावे) ।

मध्य स् सं० यास्कृत्=अवे० यास्कृत् (प्रयास करने वाला) सं० आस्ते=अवे० आस्तॅ (बैठता है) । अवे० मनस्पओर्यि । अवे० आस्नातारॅम

सं० स्=अवे० ह्

४३-स्वर से पूर्व आद्य स् नियमतः ह् होजाता है—सं० सप्त=अवे० हप्त । सं० सोम= अवे० हओम । सं० सस्=अवे० हो । सं० सूक्तम्=अवे० हूख़्तॅम । सं० सकृत्=अवे० हकृत ।

सं० अस्=अवे० (१) अह् , (२) अङ्ह् (३) अङ् (४) ओ

सं० अस्=अवे० अह्

४४–इ,ई से पूर्व सं० अस् नियमतः अह् होजाता है। सं० असि=गा०अवे० अही=य० अवे० अहि। सं० धारयसि=अवे० दारयेहि। यह भी पहले अस् था, फिर अ=ऍ हो गया।

४५–उ, ऊ और इनके गुण वृद्धि रूपों से पूर्व अस् अवे० में अह् होजाता है। सं० असुरम=अवे० अहुरॅम (असुर को)। सं० असुम=अवे० अहूम (जीवन को)

४६–अस्=अह् होता है जब परले उ, व् के बल पर अ=ओं वा ओ हुआ हो। सं। वसु=अवे० वोहु। सं० मक्षस्व=गा० अवे० बल्षोह्वा॥ ऍ से पूर्व अस् कभी कभी अह् होता है। सं० रोधसि=अवे० रओदहें (तू उगता है)।

अस्=अङ्ह्

४७–अ, आ, अॅ, अ, ओ, ओइ, आँ से पूर्व अस् नियमतः अङ्ह् हो जाता है।

सं० वस्त्रम्=अवे० वङ्हनॅम् (वस्त्र)। सं० नमसा=गा०अवे० नॅमङ्हा (नमस्कार से)। सं० वसोस्=अवे० वङ्हउश्। सं० अवसो=अवे० अवङ्हो (सहायता का)। सं० रासले=अवे० राङ्हङ्होइ (तू देवे)। सं० उषसाम=अवे० उषङ्हाँम् (उषाओं का)।

४८–ऍ, ए वा अए च से पूर्व अस् बहुधा अङ्ह् हो जाता है। सं० अवसे=गा० अवे० अवङ्हे=य अवे० अवङ्हें और अवङ्हे च।

टि० अवे० अङ्ह के स्थान अङ्ह् भी प्रयुक्त होता है जब इससे पूर्व सौवरी स्वरभक्ति इ हो वा य् के प्रभाव से 'अ' स्थानी ऍ पूर्व हो–अवङ्हें (और अवङ्हे)=सं० अवसे। अवे० यॅङ्हें=सं० यस्य। उ अक्षर मे पूर्व भी कभी अस्=अङ्ह् होता है -अङ्हुश्=असुम् (जीवन)। पर २ १ (अहूम्=असुम्)।

सं० आस्=अवे० (१) आह् (२) आङ्ह् (३) आ

सं० आस्=अवे० आह

४९–सं०आस् अवे० में नियमतः आह हो जाता है जब परे इ, ई, उ वा ऊ हो।

सं० भवासि=अवे० बवाहि (तू होवे)। सं० रासि=गा० अवे० राही (तू देता है) सं० आसुरेस्=अवे० आहुरोइश् (आसुरि का)। सं० आसु=गा० अवे० आहु (इन में)।

सं० आस्=अवे० आङ्ह्

५०–सं० आस् अवे० में आङ्ह् हो जाता है जब परे अ, आ, अॅ, ऍ, ए, ओ ओइ वा आँ हो।

सं० आस=अवे० आङ्ह (हुआ था)। सं० नासाभ्याम्=अवे० नाङ्हाब्य (दो नासाओं से)। सं० मासम्=अवे० माङ्हॅम (चन्द्र को)। सं० रासे=गा० अवे० राङ्हे (मैं देना हूं)। सं० आसस्=अवे० आङ्हो (मुंह का)। सं० धासेः=अवे० दाङ्होइत् (सृष्टि का)। सं० आसाम=अवे० आङ्हाँम् (इनका)।

सं० आस्=अवे० आ

५१—सं० अन्तिम आस् अवे० आ हो जाता है।

सं० भूयास्=अवे० बुया (तू होवे)। सं० धास्=अवे० दा (तू रचे)।

सं० अंस् (=अन्स्)।

५२—मध्यवर्ती सं० अंस् स्वर से पूर्व (१) य० अवे० में अङ्ह्, ॲङ्ह्, आँह् (२) गा० अवे० में अंग्ह्, अह् हो जाता है।

सं० अस्=य० अवे० (१) अङ्ह्, (२) ॲङ्ह्, (३) आँह्

५३—मध्यवर्ती सं० अंस् य० अवे० में अङ्ह्, ॲङ्ह् हो जाता है जब परे आ, अ, ॲ वा ओइ हो।

सं० दंससा=अवे० दङ्हङ्ह (चतुराई के साथ)। सं० शंसानि=अवे० सङ्हानि (मैं स्तुति करूं)। सं० वंसन्=अवे० वॅङहॅन् (वे प्रयत्न करते हैं)। सं० शंसेः=अवे० सङ्होइश् (वह कहे)।

५४—सं० अंस् य० अवे० में इ और य से पूर्व आँह् हो जाता है।

सं० दंसिष्ठम्=य० अवे० दाँहिश्तॅम (बड़े मक्कार को)।

सं० अंस् (२) गा० अवे० अंग्ह्, अह्

५५—संस्कृत मध्यम अंम् गा० अवे० में (१) स्वर से पूर्व अंग्ह्, और (२) म से पूर्व अह् हो जाता है।

सं० शंसानि=गा० अवे० संग्हानी (मैं कहूं)। सं० वंसत्=गा० अवे० वंग्हत् (प्रयत्न करेगा)। सं० शंसस्=गा० अवे० संग्हो (स्तुति)। सं० मंसि=गा० अवे० मंग्ही (मैंने समझा)। (२) गा० अवे० महा॰दी=(* सं० मंस्महि (हमने समझा)।

६—अन्त्य आन् (१) य० अवे० में आँन्, आँ ('च' के साथ आँस्-च) अ (अस्-च) (२) गा० अवे० अंग्, आँ हो जाता है।

सं० देवान्, अमृतान् (१) य० अवे० दएवाँन्, अमॅष (२) गा० अवे० दएवंग् अमषाँ।

स्व्=ह्, ह्व, (ङ्ह्=ङ्ह्).

५७—सं०आद्य स्व् अवेस्ता में (१) ह् वा ह्व हो जाता है (२) और मध्यम कभी ङ्ह होता है जो ङ्ह भी लिखा जाता है ।

(१) आद्य स्व्=ह्, ह्व

(१) सं० स्व अवे० ह वा ह्व (आप)। सं० स्वर्=अवे० ह्वरॅ (सूर्य) । सं० स्वश्वाः= अवे० हस्पो (उत्तम घोड़ों वाला) सं० स्वसारम्=य० अवे० ह्वङ्हरॅम् ।

(२) सं० मध्यम स्व्=ह, ह्व, ङ्ह, ङ्ह् (क) स्व्=ह् होता है आ से परे=अवे० आह्व (आहु+अ)=सं० आसु (इन में) । अ से परे गा० अवे० में गूषह्वा=सं० घोषस्व (तू सुन) । ओ से परे-बख्शोह्व=सं० भक्षस्व (भागी बना) ।

(ख) ह्व होता है (१) अ से परे—अवे० हरह्वतीम्=सं० सरस्वतीम् (सरस्वती को) ।

(ग) ङ्ह् (हस्तलिपियों में=ङ्ह्) । अवे० हुनङ्ह=सं० सुनुष्व (रस निकाल) ।

सं० स्य्=अवे० (१) ह्य् (२) ः य् (३) ङ्ह्, ि ङ्ह्

५८—संस्कृत स्य् के विकार एक तो य वाले हैं दूसरे य् रहित । य् वाले प्रायेण गा० अवे० में आते हैं और य् लोप वाले प्रायेण य० अवे० में ।

(क) स्य के य् वाले विकार ह्य और ः य

५९—सं० स्य के स् को ह् हो कर स्य्=ह्य् आता है ।

सं० स्यात्=य० अवे० ह्यात् (होवे) । सं० मास्येभ्यः=य० अवे० माह्यएइब्यो (महीनों के पतियों के लिए) । सं० असुरस्य=गा० अवे० अहुरह्या (असुर का) । सं० अस्य=गा० अवे० अह्या (इस का) ।

६०—सं० स्य को ःय् होता है (अर्थात् ः का आगम हो कर ह् का लोप हो कर ः य् होता है) ।

सं० दस्यूनाम्=य० अवे० दंयुनाँम् । सं० वस्यान्=गा० अवे० वंया

स्य् य् लोप वाले रूप ङ्ह्, ि ङ्ह्

६१—मध्यवर्ती स्य् को अवे० में ङ्ह् होता है । (य् का लोप) । सं० वस्यस्= य० अवे० वङ्हो ।

६२—मध्यवर्ती स्य् को अवे० में ि ङ्ह होता है (अर्थात् य् का तो लोप हो जाता है पर वह अपनी सौवरी स्वरभक्ति ि छोड़ जाता है) ।

सं० अस्याः=य० अवे० अ ि ङ् हा ।

टि०—स्य को हॅ, ङ्हॅ वा ङ्हॅ भी देखा जाना है। अर्थात् पूर्व विकारों के साथ य को ऍ वा य् उत्तरवर्ती अ को ऍ होता है।

सं० अस्य=य०अवे० अहॅ। सं० असुरस्य=य०अवे० अहुरहॅ। सं० यस्य=य०अवे० येङ्हॅ। सं० अस्य=य० अवे० अङ्हॅ (इस को)।

स्र=र, ङ्र

६३—संस्कृत स्र् अवेस्ता में (१) आदि में 'र्' (२) मध्य में ङ्र् हो जाता है।

(१) सं० स्रामम=अवे० रामॅम (रोग)। (२) सं० दस्रम=अवे० दङ्रो (चतुर)।

स्म=म्

६४—आद्य स्म=अवे० म। सं० स्मत्=अवे० मत् (साथ)। सं० स्मसि=अवे० महि (गा०अवे० मही)। (२) मध्य स्म=अवे० ह्म। सं० कस्मै=अवे० कह्माइ। सं० अस्मि=य० अवे० अह्मि=गा० अवे० अह्मी।

६५—सं० त्स् और च्छ=अवेस्ता स्

सं० मत्स्यस्=अवे० मस्यो (मछली)। सं० दत्स्व=गा० अवे० दस्वा (दे)। सं० इच्छति=अवे० इसैति (चाहता है)। सं० गच्छति=अवे० जसैति (जाता है)।

६६—सं० श्=अवे० स् (स्वर अर्ध स्वर और बहुत से व्यञ्जनों से पूर्व)।

सं० शास्ति=गा०अवे० सास्ती (शासन करता है)। सं० पशुम=अवे०पसूम। सं० उश्यात्=अवे० उस्यात् (वह चाहे)। सं० शफासस्=अवे० सफाङ्हो (खुर)।

६७—सं० त्त=अवे० स्त। सं० चित्तिस्=अवे० चिस्तिश् (समझ)। सं० अमवत्तर=अवे० अमवस्तर (बड़े बलवाला)।

अवे० श्, ष्, श्=सं० ष्

६८—इ, उ और उनके गुण वृद्धिरूपों से परे अवे० के श्, ष्, श् प्रायः संस्कृत ष् के स्थान आते हैं।

सं० मुष्टि=अवे० मुश्ति (मूठ)। सं० दुष्कृतम=अवे० दुश्कॅर्तॅम (दुष्कर्म)। सं०उक्षाणम=अवे० उख्षानॅम (बैल को)। सं० तृष्णा=अवे० तर्ष्नो। सं० भविष्यन्तम=अवे० भूष्यॅतॉम।

६९—इ, उ और उन के गुणवृद्धि रूपों से परे सं० अन्त्य स् को अवे० में श् होता है।

सं० अहिस्=अवे० अज़िश् (साप)। सं० तनूस्=अवे० तनुश् (शरीर)। सं० गौस्=अवे० गाउश् (गौ)।

७०—सं०क्ष (क्ष) अवे० ..है। सं० वक्षसि=अवे० वषि (तू ले जावे) । सं० मक्षु=अवे मोषु (शीघ्र)।

७१—(१) सं० ष्ट=अवे० श्त् (२) सं० श्न=अवे० ष्न (३) सं० च्य्=अवे० श्य वा ष्

(१) नष्टस्=अवे० नश्तो। सं० वष्टि=गा०अवे० वश्ती।

सं० दृष्टि=अवे० दर्शित। सं० पृष्ट=अवे० पर्श्त।

(२) सं० अश्नोति=अवे० अष्नओं ति (वह पाता है) । सं० प्रश्नस्=अवे० फ्रष्नो। (३) सं० च्यौत्नम्=अवे० श्यओथ्नॅम। सं० प्राच्य =अवे० फ्रष।

७२—सं० र्त्=अवे० ष्

सं० अमृतम्=अवे० अॅमॅषॅम (अमृत) । सं० ऋतावानम्=अवे० अषवनॅम (धर्मात्मा)।

अवे० ज़्=सं० ज्, ह् और स्

७३—अवे० ज़ कहीं संस्कृत ज् और ह् का निनिधि है और कहीं स् का सघोष रूप है।

सं० जातस्=अवे० ज़ातो (उत्पन्न हुआ)। सं० ज्रयस्=अवे० ज़्रयो (समुद्र)। सं० अर्जति=अवे० अर्ज़ति। सं० वज्रम=अवे० वज़्रॅम। —ह्=ज़्। सं० हस्त=अवे०ज़स्त (हाथ)। सं० हि=अवे० ज़ि (क्योंकि)। सं० अहम्=अवे० अज़ॅम (मैं)। सं० बाहुस्= अवे० बाज़ुश् (भुजा)। सं० बृहन्तम=अवे० बृज़ॅतॅम। स्=ज़। सघोष से पूर्व। गा०अवे० ज़्दी (तू हो) असदी=स्दी=ज़्दी। अघोष से पूर्व अस्ति।

अवे० ज़्

७३—अवे० ज़् अघोष श् का प्रतियोगी सघोष है, और कहीं कहीं सं० ज्, ह् का प्रतिनिधि भी है।

स्=ज़्। सं० दुस्-उक्तम=अवे० दुज़ूक्तॅम। सं०दुर्मन से (=दुस्+मनसे)=अवे० दुज़्मनऌहे (खोटे मन वाले को)। ज़्=ज़्। सं० तेजस्=तपज़ॅम (तेज)। सं० भजत्= अवे० बज़त् (उसने दे दिया)। ह्=ज़्। सं० अहिस्=अवे० अज़िश्(सांप)। सं० दहति=अवे० दज़ति (जलाता है)

विशेष वक्तव्य

१—संस्कृत का शब्दभाण्डार इतना ड़ा है, कि अभी तक संस्कृत का कोई भी शब्दकोष इतना बड़ा तय्यार नहीं हुआ, जिस में संस्कृत के सभी शब्द आगए हों। संस्कृत वाङ्मय अभी तक नया मिलता चला जा रहा है, और जो मिल चुका है वह भी सारा हस्तामलक नहीं हुआ। ऐसे वाङ्मय का विशेष शब्दभाण्डार अभी अज्ञात पड़ा है। जब यह सारा वाङ्मय हस्तामलक हो जाएगा, तब संस्कृत शब्दों का पूरा कोष तय्यार होगा। तब हमें संस्कृत से सम्बद्ध भाषाओं के शब्दों का संस्कृतरूप दिखलाने में और भी अधिक सहायता मिलेगी। इस से अतिरिक्त संस्कृत से निकली भाषाओं में भी बहुतेरे संस्कृत शब्द ऐसे मिलते हैं, जो संस्कृत पुस्तकों में व्यवहृत नहीं हुए। पर उन के संस्कृत होने में कोई संदेह नहीं है। ऐसे शब्द अवेस्ता में भी हैं। वे जब संस्कृत मूल शब्दों से संस्कृत के ही ढांचे में ढले हुए स्पष्ट दिखाई देते हैं, तो उनको संस्कृत शब्द मान लेने में कोई रुकावट नहीं है, तथापि ऐसे (=अप्रयुक्त शब्दों) शब्दों से पूर्व हमने * यह चिन्ह दे दिया है।

२—अवेस्ता में कारकविभक्तियों और उपपदविभक्तियों के प्रयोग में भी संस्कृत से कहीं भेद पाया जाता है। वहां हमने संस्कृत में भी अवेस्ता की चाल पर विभक्तियों का प्रयोग किया है।

३—अवेस्ता में वाक्यसन्धि नहीं पाई जाती। उसकी संस्कृतच्छाया में भी हमने वही चाल रक्खी है।

ऐसा करने में हमारा अभिप्राय यह है, कि एक एक शब्द का संस्कृत से मिलान स्पष्ट रहे।

(४) वर्णमाला में जो अनुनासिक ङ्, ङ् दिये हैं। उन के स्थान आगे ङ्, ँ, का संकेत ध्यान रक्खें।

* संस्कृत अवेस्ता *

हओम यश्त-यस्न ९

अवे०—हावनीम्. आ. रतूम्. आ.
हओमो. उपाइत्. ज़रथुश्त्रॅम्.
आत्रॅम्. पइरि. यओज़्दथॅन्तॅम्. गाथास्च. स्रावयॅन्तॅम्.
आ. दिम्. पॅरसत्. ज़रथुश्त्रो'.' को. नरॅ. अही.
यिम्. अज़ॅम्. वीस्पहे. अङ्हउश्.
अस्त्वतो. स्रएश्तॅम्. दादरॅस.
ह्वहे. गयेहे. ह्वन्वतो. अमॅषहे '.'

सं०—सावनम् आ ऋतुम् आ, सोमः उपैत् जरथुश्त्रम्
आत्रिम् * परियोदधन्तम् गाथाश्च श्रावयन्तम् ।
आ तम् पृच्छत् जरथुश्त्रः को नर असि
यमहं विश्वस्य असोः अस्थन्वतः श्रेष्ठं ददर्श
स्वस्य गयस्य * स्वन्वतो अमृतस्य १

अर्थ—(सोम-) सवन के समुचित समय पर * सोम जरथुश्त्र † के पास

---

* आ=पर । आ निपात के योग में द्वितीया अवे० की विशेषरचना है ।

† जरथुस्त्र ईरानियों का ऋषि, जिस ने ईरानियों को धर्म का मार्ग दिखलाया । इस का समय योरुप के विद्वानों ने ई० पू० ६६० माना है । अवेस्ता का गाथाभाग इस ऋषि का श्रीमुखवाक्य माना जाता है ।

आया, (जो कि)यजन के लिए अग्नि * का संस्कार कर रहा था † और गाथाओं का उच्चारण कर रहा था ।

उस से जरथुश्त्र ने पूछा, हे नर ! तू कौन है ? जिस को मैं समस्त देहधारी ‡ जीवलोक में श्रेष्ठ, अपने अमर जीवन से देदीप्यमान § देख रहा हूं ‖ ।

अवे०–आअत्. मे. अएम्. पइत्यओख्त. हओमो. अषव्. दूरओषो ∴

अजॅम्. आह्मि. ज़रथुश्त्र. हओमो. अषव्. दूरओषो ∴

आ. माँम्. यासङ्घ. स्पितम. फ्रा. माँम्. हुन्वङ्घ. ह्वॅरतएँ.

अओइ. माँम्. स्तओमइने. स्तुइदि.

यथ. मा. अपरचित्. सओश्यंतो. स्तवाँन् ∴ २

सं०–आत् मे अयं प्रत्यवोचत् सोमो ऋतावा दुरोषः ।

अहमस्मि जरथुश्त्र सोमः ऋतावा दुरोषः ।

आ मां याचस्व स्पितम प्र मां सुनुष्व * स्वृतये (=अश्नवै)

अभि मां स्तोमनि स्तुहि

यथा मां अपरेचित् सोष्यन्तः स्तुवन् । २

तब मुझे इस सोम ने, जो दिव्य नियमों वाला और दूर फैले हुए तेज वाला ¶

---

* ऋ २ । ८ । ५ में 'अत्रि' अग्नि के लिए प्रयुक्त हुआ है । कई गवेषकों ने 'आत्रॅम्' का मेल अथर्व से माना है ।

† पइरि यओज़दथ्रॅतम । यह अवे० धातु दा=सं० धा, का शत्रन्त रूप है, जो 'योस्' के साथ समस्त हो कर प्रयुक्त हुआ है । जैसा कि वेद में श्रद्धा=श्रत्+धा समस्त है । योस् का धा के साथ व्यस्त प्रयोग ऋ० १ । ९३ । ७; ६।५०।७; ७ । ३९ । ४; १० । १५ । ४ और १०।३६।११ में हुआ है । अवे० में योस् के अघोष स् को ज़् सघोष सन्धि हुई है ।

‡ अस्त्वत् का अर्थ है हड्डियों वाला । अभिप्राय भौतिक शरीरधारी से है ।

§ स्वन्वतः यहां स्वन्वन्तं के अर्थ में और 'स्वस्य गयस्य अमृतस्य=स्वेन गयेन अमृतेन' के अर्थ में है । षष्ठी सम्बन्ध सामान्य में अन्य कारकों के स्थान भी प्रयुक्त होती ही है ।

‖ दादरॅस वैदिक परोक्ष की तरह वर्तमानार्थक भी है ।

¶ 'दूर ओषो' समास है ओष उष् चमकना से है, जिस से उषस् बना है । अर्थ होगा दूर फैले हुए तेज वाला । ऋ० ६ । १०१ । ३ में दुरोष सोम का विशेषण है । पद पाठ में इसका अवग्रह नहीं है ।

है, उत्तर दिया *। मैं हूं हे ज़रथुश्त्र दिव्य नियमों वाला और दूर फैले हुए तेज वाला सोम। मुझ से (अपनी कामनाएं) माग हे स्पितम †। मुझे पीने के लिए बहा। मेरी स्तोत्रों मे स्तुति कर, जैसे (पूर्व काल में) दूसरे भी सोष्यन्तों‡ ने मेरी स्तुति की है।

अवे०–आअत्. अओख्त. ज़रथुश्त्रो॰ नेमो. हओमाइ.

कस्. थ्वाँम्. पओइर्यो. हओम. मश्यो.

अस्त्वइथ्याइ. हुनूत. गएथ्याइ॰

का. अह्माइ. अषिश्. ऋनावि.

चित्. अह्माइ. जसत्. आयप्तम्॰ १

सं०—आत् अवोचत् जरथुश्त्रः। नमः सोमाय।

कस्त्वां पूर्व्यः सोम मर्त्यः

अस्थन्वत्यै सुनुत जगत्यै।

का अस्मै आशीः ऋणावि

किम् अस्मै गच्छत् आप्तम्। १

अर्थ—तब ज़रथुश्त्र ने कहा–नमस्कार हो सोम को। कौन (वह) हे सोम पहला मनुष्य (था, जिस ने) शरीरधारी जीव लोक के लिए तुझे बहाया। कौन इस की कामना पूर्ण हुई, क्या इस को लाभ मिला।

अवे–आअत्. मे. अएम्. पइत्यओख्त.

हओमो. अषव. दूरओषो.

वीवङ्हा. माँम्. पओइर्यो. मश्यो.

अस्त्वइथ्याइ. हुनूत. गएथ्याइ॰

* वच् परस्मैपदी है। पर अवे० में जो यहां प्रयोग है पइत्यओख्त, वह आत्मनेपद का है।

† स्पितम ज़रथुश्त्र का गोत्रनाम है। बुन्दहिश्न में वंशावलि इस प्रकार दी है–स्पितम (=सं० श्वितम=श्वेततम)–हरिदर–हरिदर्श्न–पएँतिरस्प–चक्श्नुश् (चक्षुः)–हएँचत्अस्प–अउर्वत्. अस्प–पएतिरॅस्प–पोउरुषस्प–ज़रथुश्त्र।

‡ सओश्यंतो=सं० 'सोष्यन्तः' सु से, सोष्यन्तः-सोमयाजी। वा शु=सं० च्यु से सोश्यन्तः है। लोगों को धर्म का मार्ग दिखलाने वाले।

हा. अह्माइ. अषिश्. ऋनाव्रि.
तत्. अह्माइ. जसत्. आयप्तँम्.
यत्. हे. पुथ्रो. उस्. जयत.
यो. यिमो. ख्षएतो. हूँथ्वो. ह्वॅरनङ्हस्तॅमो. ज़ातनाँम्.
ह्वॅदॅरॅसो. मश्यानाँम्. यत्. कृनओत्. अङ्हे. ख्षथ्राद्.
अमर्षत. पसु. वीर. अङ्हओषॅम्ने. आप. उर्वइरे.
ह्वइर्यॅन्. ह्वॅरॅथॅम. अएअग्रम्नॅम. ४

सं०—आत् मे अयं प्रत्यवोचत
सोमः ऋतावा दुरोषः।
विवस्वान् मां पूर्व्यो मर्त्यः
अस्थन्वत्यै सुनुत जगत्यै
सा अस्मै आशीः ऋणावि
तदस्मै गच्छत् आप्तम्
यदस्य पुत्र उज् जायत
यो यमः क्षित् सुवन्ता स्वरणवत्तमो जातानाम्
स्वर्दृशो मर्त्यानाम्। यत् कृणोत् अस्य क्षत्रादा
अमरिष्यन्ता पशुवीरा अशुष्यमाणे अम्बुर्वरे
स्वरितवे स्वृतम् अज्येयम्। ४

तब इस सोम ने, जो दिव्य नियमों वाला और दूर फैले हुए तेज वाला है, मुझे उत्तर दिया। वीवह्वन्त (विवस्वन्त=विवस्वान्) पहला मनुष्य था, जिस ने मुझे शरीरधारी जीवलोक के लिए बहाया। इस को यह कामना पूरी हुई, इस को यह लाभ मिला। कि इस के घर पुत्र उत्पन्न हुआ *, जो † यम (जनों का)

* उज् जायत=उदजायत, अ आगम के अभाव में यह रूप बना है। जैसा कि 'दर्शनु विश्वदर्शतं दर्शं रथ मधिक्षमि। एता जुषत मे गिरः (ऋ १।२५।१८) में दर्शम्, जुषत 'अदर्शम्, अजुषत' के स्थान प्रयुक्त हुए हैं, अवे० में ऐसे प्रयोग बहुत हैं।

† 'यत्' अवेस्ता में तीनों लिङ्गों के लिए 'सामान्ये नपुंसकम्' आता है। अथवा यह एक सम्बन्धी निपात है।

शासक, * बड़ा विजयी, † उत्पत्ति वालों में बड़ा तेजस्वी, मनुष्यों में सूर्य के समान था। जिसने अपने शासन में ‡ पशु और मनुष्यों को न मरने वाले, और जल तथा ओषधियों § को न सूखने वाले (सदा हरे) बनाया, और प्रजाओं के खाने के लिए अक्षय (अखुट्ट) आहार बनाया।

अवे०—यिमहे॑. ख्षथ्रे॑. अउर्वॆहे॑.

नोइत्. अओतॅम्. आङ्ह. नोइत्. गरॅमॅम्.
नोइत्. ज़उर्व. आङ्ह. नोइत्. मृथ्युश्.
नोइत्. अरस्को. दएवोदातो ·.·
पंचदस. फ्र. चरोइथे॑
पित. पुथ्रस्च. रओदएष्व. कतरस्चित्.
यव्त. ख्षयोइत्. हॅंथ्वो. यिमो. वीवङ्हतो. पुथ्रो ·.·

सं०—यमस्य क्षत्रे उर्वियस्य
नेत् ओष्म आस नेत् घर्मम्
नेत् जरा आस नेत् मृत्युः
नेत् * रेषको देवधितः।
पञ्चदशा प्रचरेते
पिता पुत्रश्च रोहेष्वा कतरश्चित्
यावत् क्षयेत् सुवन्ता। यमो विवस्वतः पुत्रः। ५

---

* ख्षएतो=सं० क्षित–'शासक' क्षि से, जैसे महीक्षित, परीक्षित। यमक्षित–'यम शासक' ही शाहनामा का जमशीद है।

† सुवन्ता=सुवन+त। वन (=तना० उ०)+त से। देखो वन्त का प्रयोग ऋ० ३।३०।१८ और ७।८।३ 'वन्तारः'

‡ क्षत्रात्+आ=क्षत्रादा–'शासन तक'

§ उर्वरा, अवेस्ता में 'ओषधि' अर्थ में प्रयुक्त होता है जो संस्कृत में उपजाउ या जोती हुई भूमि के अर्थ में आता है।

भा०-तेजस्वी* यम के राज्य में, न ही (अति-) शीत † था, न ही (अति-) गर्मी‡ न ही बुढ़ापा था न ही मृत्यु। न ही देवों § की रची ईर्ष्या || थी। पिता और पुत्र अपने चेहरों पर से हरएक पन्द्रह वर्ष के (प्रतीत होते हुए) फिरते थे, जब तक विवस्वान् के पुत्र यम ने राज्य किया।

अवे०—कस्ॅ. थ्वाँम्. बित्यो. हओम. मश्यो.

अस्त्वइथ्याइ. हुनूत. गएथ्याइ.

का. अह्माइ. अषिश् . ऋनावि.

चित्. अह्माइ. जसत् . आयप्तॅम्. ६

सं०—कस्त्वां द्वितीयः सोम मर्त्यः

अस्थन्वत्यै सुनुत जगत्यै

का अस्मै आशीः ऋनावि

किम् अस्मै गच्छत आप्तम् ६

भा०-कौन वह हे सोम दूसरा मर्त्य हुआ जिस ने जीवलोक के लिये तुझे बहाया। कौन उसकी कामना पूर्ण हुई। क्या उसको लाभ पहुंचा।

अवे०—आअत् मे अएम् पइत्यओख्त हओमो अषव् दूरओषो

आथ्व्यो माँम् बित्यो मश्यो अस्त्व इथ्याइ हुनूत गएथ्याइ '.'

हा. अह्माइ. अषिश्, ऋनावि. तत्. अह्माइ. जसत्. आयप्तॅम्

यत्. हे. पुथ्रो. उस्. जयत वीसो सूरया थ्रएतओनो ७

सं०—आत् मे अयम् प्रत्यवोचत् सोमः ऋतावा दुरोषः

आप्त्यो मां द्वितीयो मर्त्यः अस्थन्वत्यै सनुत जगत्यै

---

* उर्वियस्य ५ । ५५ । २ में सायण के अनुसार पुंलिङ्ग नाम है।

† ओद्म (उन्द=गीला करना से) देखो पा० ६ । ४ । २९ । गीला करने वाला ।—'शीत'

‡ ' घर्म ' वेद में पुंलिङ्ग है—१० । १८१ । ३

§ ' रेषक ', रिष् - हानि उठाना से । अक प्रत्ययान्त है । फार० रश्क इस से निकला है ।

|| 'देव' अवेस्ता में सर्वत्र देवों के अर्थ में है, दात, दा=सं० धा 'रचना' से है । धा का क्तान्त रूप वेद में धित—सुधित, दुर्धित । दूसरा रूप ' हित ' है । लोक में यही पाया जाता है ।

* प्रचरेते आत्मनेपद आवेस्तिक है ।

सा अस्मै आशीः * ऋणावि तत् अस्मै गच्छत् आप्तम्
यद्स्य पुत्रः उज् जायत विशः शूरायाः त्रैतानः । ७

तब इस सोम ने जो दिव्य नियमों वाला और दूर फैले हुए तेज वाला है मुझे उत्तर दिया। आथ्व्य (आप्त्य*) वह दूसरा मर्त्य था, जिस ने मुझे जीवलोक के लिए बहाया। यह उसकी कामना पूरी हुई। यह उसको लाभ पहुंचा। जो इस के घर शूरबीर वैश्य का पुत्र त्रैतान नाम हुआ *।

अवे०–यो. जनत्. अज़ीम्. दहाकॅम्. थ्रि. ज़फ़नॅम्. थ्रि. कम्रदॅम्.
क्षवश्. अषीम्. हज़ङ्रा. यओख्श्तीम्.
अशओजङ्हॅम्. दएवीम्. द्रुजॅम्. अगॅम्. गएथाव्यो. द्वंतॅम्.
याँम्. अशओजस्तॅमाम्. द्रुजॅम्.
फ़च. कॅरॅन्तत्. अङ्रो. मइन्युश्.
अओइ. याँम्. अस्त्वइतीम्. गएथाँम्.
महकाइ. अषहे. गएथनाँम् †. ८

सं०—यो अहन् अहिम् दंशकम् त्रिजम्भनं त्रिकमूर्धानम्
षडक्षम् सहस्रयुक्तिम् अत्यौजसं दैवीम् द्रुहम्
अघं जगतीभ्यो द्रवन्तम् याम् अत्योजस्तमां द्रुहम्
प्राक् कृन्तत अङ्गरोमन्युः। भि याम् अस्थन्वतीम् जगतीम्
मरकाय ऋतस्य जगतीनाम् । ८

भा०—जिसने डसने वाले सांप† को मारा जो तीन जबड़ों वाला, तीन खोपरियों

---

* अवे० के आथ्व्य और थ्रएतओनो शब्द तो वैदिक आप्त्य और त्रैतान के संवादी हैं, पर नाम ये स्वतन्त्र हैं। (ऋ० १ । १०५ । ९) में त्रित को आप्त्य ' जल का पुत्र ' कहा है। अवे० का थ्रित कृसास्प का पुत्र है। थ्रएतओनो शाहनामा का फरीदून है जो आथ्वीन का पुत्र है।

† अज़ीम् दहाकॅम्। पहलवी में देओजुही और शाहनामा में दहाक=ज़ुहाक बना है। दह्=दश् (दंश्) काटना, डंसना से है। क=कु। मूर्धा-खोपरि, सिर। द्रवन्त्–ऋत के मार्ग से भागा हुआ। श्रद्धाहीन, अविश्वासी।

वाला, छः आंखों वाला, हजारों चालाकियों वाला, बड़ा बलवन्त (मूर्तिमान्) देओ द्रोह था, प्रजाओं के लिए पापमय और श्रद्धाहीन था। जिस बड़े बलवन्त देओ द्रोह को-अङ्‌रोमन्यु ने काट गिराया-जोकि शरीरधारी सृष्टि के प्रतिकूल था, जो ऋत की सृष्टि का विनाशक था।

अवे०—कस॑. थ्वाँम्. थ्रित्यो. हओम. मश्यो.

अस्त्वइथ्याइ. हुनूत. गएथ्याइ '.'

का. अह्माइ. आषिश्. ऋनावि.

चित्. अह्माइ. जसत्. आयसॅम्. ९

सं०—कस्त्वां तृतीयः सोम मर्त्यः अस्थन्वत्यै सुनुत जगत्यै

का अस्मै आशीः ऋणावि किम् अस्मै गच्छत् आप्तम् ९

कौन वह हे सोम तीसरा मर्त्य हुआ, जिस ने जीवलोक के लिए तुझे बहाया। क्या उस की कामना पूर्ण हुई। क्या उस को लाभ पहुंचा।

अवे०—आअत्. मे. अएम्. पइत्यओख्त.

हओमो. अषव्. दूरओषो.

थ्रितो. सामनाँम्. सॅविश्तो. थ्रित्यो. माँम्. मश्यो.

अस्त्वइथ्याइ. हुनूत. गएथ्याइ.

हा. अह्माइ. आषिश्. ऋनावि.

तत्. अह्माइ. जसत्. आयसॅम्.

यत्. हे. पुथ्र. उभ्. जयोइथे.

उर्वाख्षयो. कृसास्पस्च '.'

त्कएषो. अन्यो. दातो-राजो.

आअत्, अन्यो. उपरो-कइर्यो. यव. गएसुश्. गदवरो '.' १०

सं०—आत् मे अयं प्रत्यवोचत् सोमः ऋतावा दूरोषः

त्रितः सामानां शविष्ठः तृतीयो मां मर्त्यः

अस्थन्वत्यै सुनुत जगत्यै।

सा अस्मै आशीः ऋणावि। तत् अस्मै गच्छत् आप्तम्।
य अस्य पुत्रा उज् जायेते
उर्वाक्षः कृशाश्वश्च अतिचक्षा अन्यो धातर.जः
आत् अन्य उपरिकार्यः युवा केशवो गदाभरः १०

भा०—तब इस दिव्य नियमों वाले दूर फैले हुए तेज वाले सोम ने मुझे उत्तर दिया। त्रिन सामवंशियों का महाबली तीसरा मनुष्य था, जिसने मुझे शरीरधारी जीव लोक के लिए बहाया। इसकी यह कामना पूरी हुई। इस को यह लाभ पहुंचा (फल मिला) कि इसको दो पुत्र जन्मे उर्वाक्ष और कृशाश्व। उन में से एक दूरदर्शी * धर्मशास्त्रकार † हुआ और दूसरा (मनुष्यों से–) ऊंचे कार्यों वाला, युवा, घुंघराले बालों वाला ‡ गदाधारी §।

अवे०—यो. जनत्. अज़ीम्. स्रवॅरम्. यिम्. अस्पो.गरॅम्. नृ.गरॅम्.
यिम्. वीषवॅन्तम्. ज़इरितॅम्.
यिम्. उपइरि. वीश्. अरओदत्.
आइत्यो-वरॅज़. ज़इरितॅम्.·. यिम्. उपइरि. कृसास्पो.
अयङ्ह. पितूम्. पचत. आ. रपिथ्विनॅम्. ज्रवानॅम्.·.
तफ़्सत्-च. हो. मइर्यो. ह्वीसत् च.·.
फ्राश्. अयङ्हा. फ्रस्परत्.
यएश्यंतीम्. आपॅम्. पराङ्हात्.·.
पराँश्. तरर्तो. अपतचत्. नइरमना. कृसास्पो. ११

* दूरएश। अति–चष् (=सं० चक्ष्) से। सं० अतिचक्षस्, उरुचक्षस् के सादृश्य से बना है। साधारण मनुष्य से उलांघ कर देखने वाला, बडा विद्वान–मिलाओ ऋषि द्रष्टा से।

† उर्वाक्ष–धर्माचार्य था और अपनी विद्या से प्रसिद्ध था। इस को इस के शत्रु हितास्प ने मारा इसका बदला लेने के लिये इसके छोटे भाई कृशाश्व ने रामयज़त को पुकारा और उस की सहायता से हितास्प को मारा। दातोराज़ो=थामने वाला शासक।

‡ गएसुश् से गेसू निकला है।

§ गदवरो=सं० गदाभरः प्रयुक्त गदाधरः।

सं०—यो अहन् अहिम् शृङ्गमरम्   यम् अश्व-गरम् नृ-गरम्
यम् विषवन्तम् हरितम्   यम् उपरिविषम् अरोहत्
* ऋष्टिवर्हः हरितम्   यम् उपरि कृशाश्वः
अयसा पितुम् पचत   आरपिथ्विनं* जयाणम्
तप्सत च स मर्यः स्विद्यत्च   प्राक् अयसः प्रास्फुरत
यस्यन्तीः अपः परास्यत   प्राङ् त्रस्तो अपातश्चत
नरमनाः कृशाश्वः ।   ११

अर्थ—जिस (कृशाश्व) ने सींगों वाले नाग को मारा। (जोकि) घोड़ों के निगलने वाला * और मनुष्यों के निगलने वाला था, बड़ा ज़हरीला और हरा था और जिस पर नेज़े जितना ऊंचा † हरा विष उगा हुआ था। जिस पर कृशाश्व ने दोपहर ‡ के समय, § लोहे (के बर्तन) से अपना अन्न पका'या।

तब वह नाग ‖ जूंही कि गर्म हुआ ¶ और उसमे पसीना बहने लगा, तो वह उस लोहे (के बर्तन के नीचे) से सरक गया और उबले हुए जलों ** को फेंक दिया। कृशाश्व डर गया और पीछे को भाग गया यद्यपि वह बड़ा मनस्वी था।

अवे०—कसॅ. थ्वाँम्. तूइर्यो. हओम. मश्यो.
अस्त्वइथ्याइ. हुनूत. गएथ्याइ .'.
का. अश्याइ. अषिश्. ऋनावि.
चित्. अश्याइ. जसत्. आयप्तम्.   १२

---

* अश्वगर–अजगर के सादृश्य पर है। अजगर ' बकरों के निगल जाने वाला।

† ऋष्टिवर्हः–अद्रिबर्हः (पर्वतवत् ऊंचा ऋ० १० । ६३ । ३) के सादृश्य पर है।

‡ रपिथ्विन पारसी धर्ममर्यादा के अनुसार दिन के पांच भागों में से दोपहर से आधा दिन ढले तक की वेला।

§ ज्रयाणम् ज्रि–जाना (नि० २ । १४) से है । चला जाने वाला–काल। अवे० ज़ुर्वानम् से फा० ज़माना निकला है।

‖ तप्सत्=अतप्सत छांदस=अताप्सीत् मिलाओ फा० तप्सीदन

¶ यएॅश्यंतीम्, यस्यन्तीः यस् उबलना से। आपम् एकवचन। आप् ' जल ' अवेस्ता में तीनों वचनों में है।

** अवेस्ता में ' नर ' वीर के अर्थ में है । नइरेमना=नरमनाः=वीर मन वाला। शाह नामा में नरीमान एक वीर पुरुष हुआ है।

सं०—कस्त्वां तुरीयः सोम मर्त्यः अस्थन्वत्यै सुनुत जगत्यै ।
का अस्मै आशीः ऋणावि किम् अस्मै गच्छत आप्तम् १२

भा०—कौन वह चौथा मर्त्य था हे सोम, जिस ने तुझे शरीरधारी जीवलोक के लिये बहाया। क्या इसकी कामना पूरी हुई। क्या इसको लाभ पहुंचा।

अवे०—आअत्. मे. अएम्. पइत्यओख्त.

हओमो. अषव्. दूरओषो.·.

पोॅउरुषस्पो. माँम्. तूइर्यो. मश्यो.

अस्त्वइथ्याइ. हुनूत. गएथ्याइ.

हा. अह्माइ. अषिश. ऋनावि.

तत्. अह्माइ. जसत्. आयप्तॅम्.

यत्. हे. तूम्. उस्. ज़यङ्ह.

तूम्. ऋज्वो. ज़रथुश्त्र. न्मानहॅ. पोॅउरुषस्पहॅ.

वीदएवो. अहुर.त्कएषो ·.· १३

सं०—आत् मे अयं प्रत्यवोचत् सोमः ऋतावा दुरोषः
पुर्वश्वो मां तुर्यो मर्त्यः अस्थन्वत्यै सुनुत जगत्यै
सा अस्मै आशीः ऋणावि तत् अस्मै गच्छत् आप्तम्
यत् अस्य त्वं उज्जायथाः त्वं ऋजो जरथुश्त्र
दमस्य पुर्वश्वस्य विदेवो असुरातिचक्षाः १३

भा०—तब इस सोम ने, जो दिव्य नियमों वाला और बड़ा तेजस्वी था, मुझे उत्तर दिया। पुर्वश्व * वह चौथा पुरुष था,जिसने शरीरधारी जीवलोक के लिये मुझे बहाया। यह उसकी कामना पूरी हुई यह उसको फल प्राप्त हुआ जो उसके तू उत्पन्न हुआ। तू जो हे सरल † ज़रथुश्त्र पुर्वश्व के घर में‡ देवों का विरोधी और अहुर के धर्म का द्रष्टा है।

* पोउरुषस्पो,=पुर्वश्वः अर्थ—बहुत घोडों वाला (देखो यस्न २३ । ४)। ज़रथुश्त्र का पिता। पूर्व पारसियों में नामान्त अस्प बहुत प्रयुक्त है । अभिप्राय योधा से है । पुर्वश्व दरॅज नदी के तट पर पर्वत के पाद में रहता था (वेन० १९ । ४)।

† ऋजो, हे सरल, मिलाओ 'ऋजवे मर्त्याय' (ऋ २ । २७ । ९) से।

‡ य०अवे० ग्मान । गा० दॅमान (=सं० धामन्) आ की निवृत्ति हो कर गुण समीकरण से ग्मान=न्मान हुआ।

अवे०—स्रुतो. अइर्य़ॅने. वएजहॅ. तूम. पओइर्यो. ज़रथुश्त्र.

अहुनॅम्. वइरीम्. फ़्रस्रावयो. वीबृथ्वॅंतम्. आख्तूइरीम्.

अपरॅम्. ख्रूओज़्य़ॅ. फ़्रस्रूइति ·:· १४

सं०—श्रुतः आर्यायने बीजे त्वं पूर्व्यः जरथुश्त्र

अहुनम् वइर्यम् प्रश्रावयः * विभृतवन्तम् * आतूर्यम्

अपरम् * क्रुष्टतरा प्रश्रुती १४

विख्यात सारे आर्यायनबीज (आर्यों के घर मूल) * में तू पहला है हे जरथुश्त्र जिसने अहुनवइर्य † का (पाद अक्षर) विभाग युक्त चार ‡ बार § उच्चारण किया और फिर एक बार बहुत ऊंची श्रुति के साथ उच्चारण किया।

अवे०—तूम्. ज़ॅमर-गूज़ो आकॅनवो. वीस्पे. दएव्र. जरथुश्त्र.

योइ. पर. अह्मात्. वीरो-रओद्.

अपतयॅन्. पइति. आय.ज़ॅमा ·:·

यो. अओजिश्तो. यो. तॅचिश्तो.

यो. थ्वख्षिश्तो. यो. आसिश्तो.

यो. अस् . वृध.जॅम्तॅमो. अबवत्. मइनिवा. दामाँन्. १५

---

* अइर्य़ॅने वएजहॅ (आर्याने बीजे, से पहलवी और वर्तमान फारसी का रूप ईरानवेज़ निकला है, जिस का छोटा नाम ईरान है ईरानी और आर्यावर्त के आर्य मूल में एक जाति की दो शाखाएं हैं। ईरानी भी अपने को आर्य कहने में वैसा ही मान समझते थे, जैसे आर्यावर्त के आर्य । जैसे आर्यों के इस देश का नाम आर्यावर्त है, वैसे आर्यों के उस देश का नाम अइर्य़ॅन=आर्यायन (आर्यों का घर) है।

† अहुनॅम्वइरीम् (२ । १) । वह सूक्त जो 'यथा-अहुवइर्यो' से आरम्भ होता है। यह जरथुश्त्रीय धर्म की तीन मुख्य प्रार्थनाओं में से एक है, जो जरथुश्त्र से पहले की मानी गई है । दूसरी का आरम्भ अशॅमवोहू और तीसरी का यङ्हे हातॅाम् है । अहुनवइर्य ज़रथुश्त्रधर्मियों में गायत्री की पदवी रखता है।

‡ ' विभृतवन्तं ' वि+भृ अलग अलग रखना, बांटना। देखो ऋ० १ । ७० । ५ (पितुर्नजिव्रे-र्विवेदो भरन्त)। अवे० में यह मन्त्र को पादाक्षर विभाग सहित उच्चारण करने में प्रयुक्त है।

§ ' आतुर्यम् ' छन्दांसि च दधत आद्वादशम् (ऋ १० । ११४ । ६) में आए ' आद्वादशं ' के समान है।

सं०—त्वं * ज्मागुहः आकृणोः विश्वान् देवान् जरथुश्त्र
ये परा अस्मात् * वीररोहाः अपतयन् प्रति अया ज्मा।
य ओजिष्ठः यम् त्वक्षिष्ठः यम् त्वक्षिष्ठः य आशिष्ठः
यो अतिवृत्रहन्तमः अभवत् मन्व्वोः धामनि १५

भा०—तूने हे जरथुश्त्र सारे देवों को भूमि के नीचे छिप जाने के लिए विवश किया* जो इस से (तेरे आने से) पहले मनुष्यों के आकार में † इस पृथिवी पर सर्वत्र फिर रहे थे। तू जो कि बड़ा बलवन्त बड़ा मनस्वी (दिलेर)‡ बड़ा कारीगर और बड़ा फुर्तीला है। और जो दोनों आत्माओं के लोक में शत्रुओं को मार हटाने वालों में सब को पीछे छोड़ गया है।

अवे०—आअत्. अओ॒ग्न. ज़रथुश्त्रो.
नॅमो. हओमाइ. वङ्हुश्. हओमो.
हुदातो. हओमो. अर्शदातो. वङ्हुश्-दातो. बएषज्यो.
हुकृफ़श्. हरॅश्. वृथ्रजा. ज़इरि-गओनो. नॅम्याँसुश्.
यथ. हुरॅते. वहिश्तो. उरुनएच. पाथ्मइन्योॅतमो १६

सं०—आत् अवोचत् ज़रथुश्त्रः नमः सोमाय वसुः सोमः
सुधितः सोमः ऋतधितः वसुधितः भैषज्यः
सुकृप् सुवृक् वृत्रहा हरिगुणो नम्रांशुः
यथा स्वर्तवे वसिष्ठः * उर्वाणे च * पथिमत्तमः १६

भा०—तब ज़रथुश्त्र ने कहा, नमस्कार है सोम को, जो बड़ा उत्तम §, उत्तम रचना वाला||, ऋत से उत्पन्न हुआ¶, उत्तम शक्तियों से रचा हुआ, स्वास्थ्य देने वाला, सुन्दर

* 'आकृणोः' अन्तर्भावितण्यर्थ है। भूमि में छिप जाने का कारण बना है।

† वीररोहाः=मनुष्यों की चढ़तल वाले, मनुष्यों के आकार वाले।

‡ त्वक्षिष्टः, त्वञ्च् (मनस्वी होना) से है।

§ वङ्हुश्=वसुः 'वसो' ऋ० ९।९८।५। में सोम का सम्बोधन है। रूपावलि में इस के वङ्हु और वोॅहु दो रूप मिलते हैं।

|| सुदातः। दा (=सं० धा) से। वेद में सुधित प्रयुक्त हुआ है।

¶ ऋतदातः। मिलाओ ऋतजातः (ऋ० ९।१०८।८) से

आकृति वाला *, उत्तम कर्मों वाला †, शत्रुओं के मारने वाला, सुनहरी रंग वाला ‡, झुकी हुई डालियों वाला, पीने वाले के (शरीर के) लिए बड़ा उत्तम और आत्मा § के विषय में सीधे रस्ते पर लेजाने वाला है।

अवे०—नी ते. ज़ाइरें. मदॅम्. म्रुये. नी. अमॅम्. नी. *वृथ्रग्नॅम्.
नी. दस्वरॅं. नी. बएषजॅम्. नी. फ्रदथॅम्. नी. वरॅदथॅम्.
नी. अओंजो. वीस्पो.तनूम्.
नी. मस्तीम्. वीस्पो. पएसङ्हॅम्'.'
नी. तत्. यथ. गएथाहु. वसो.ख्षथ्रो. फ्रचरानॅ.
त्बएषो. तउर्वा द्रुजॅम्.वनो'.' १.७

सं०—नि ते हरे मदं ब्रुवे नि अमं नि* वृत्रघ्नम्
नि* दस्वरं नि भेषजम् नि* प्रदधम् नि वर्धम्
नि ओजो विश्वतनुम् नि मतिं विश्वपेशम्
नि तत् यथा गेथास्वा वशक्षत्रः प्रचराणि
द्विष्टुर्वाणः द्रुहंवनः १.७

भा०—मैं तुझ से मांगता हूं हे सुनहरी रंग वाले! मस्ती, शक्ति, शत्रुओं का वध ‖ स्वास्थ्य¶ और स्वास्थ्य के उपाय। आगे रहना**, वृद्धि,सारे शरीर में भर जाने वाला

---

* कृप् आकार बनाने वा रूप देने अर्थ में ऋ० ९।६४।२८ में प्रयुक्त है।

† ऋ० १०।३८।५। में 'स्ववृजं' इन्द्र का विशेषण है। वृज् अवे० में काम करने के अर्थ में है।

‡ गओन=गुण का अर्थ अवे० में गुणविशेष रूप हो गया है। यही शब्द फारसी में आकर गून हुआ है। सोम का रंग सुनहरी ऋ० ९।६५।८ में कहा है।

§ उर्वान=उर्वाणः आत्मा। वृ 'चुनना' से है।

‖ घञर्थ में क हो कर विघ्न के समान वृत्रघ्न बना है।

¶ दस्वर—दस् से वैदिक दंसना, दस्म, दस्र बने हैं। यहां वर प्रत्यय के साथ दस्वर बनाया गया है। अवे० में यह शब्द नियमतः भेषज के साथ आया है। दोनों का सम्बद्ध अर्थ स्वास्थ्य और स्वास्थ्य का उपाय है।

** प्रदधम् 'इळादूधम्' के सदृश (देखो 'ददतिदधात्योर्विभाषा' पा० ३।१।१३९)

उत्साह, और सब प्रकार की मति (सर्वतोमुखी मति)*, जिससे कि मैं इन सब लोकों में स्वाधीन वीरों वाला, द्वेषियों को दबा लेने और द्रोहियों को जीतने वाला† होकर विचरूं।

अवे०—नी. तत्. यथ. तउर्व्रेयेनि.

वीस्पनाँम्. त्बिष्व्रताँम्. त्बएषा.

दएवनाँम्. मश्यानाँच. याथ्वाँम्. पइरिकनाँम् च.

साथ्राँम्. कओयाँम् करफ्नाँम्च.

मइर्यनाँम्च. बिजंग्रनाँम्.

अर्षमओग्नाँम्च. बिजंग्रनाँम्.

वॅह्रकनाँम्च . चथ्वरॅ.जंग्रनाँम्.

हएन्यास् च. पृथु.अइनिकया.

दवँइथ्या. पतँइथ्या '.' १८

सं०—नि तत् यथा तूर्वयाणि विश्वेषां द्विष्वतां द्विषाम्,
देवानां मर्त्यानां च यातूनां *परिकाणां च
शास्तॄणां कवानां कृपणानां च मर्याणां च द्विजङ्घानाम्
ऋतमोघानां च द्विजङ्घानाम् वृकाणां च चतुर्जङ्घानाम्
सेनायाश्च पृथ्वनीकायाः दवन्त्याः पतन्त्याः १८

और मैं यह सब मांगता हूं कि मैं सारे द्वेषियों के द्वेषों के, देओं के और मनुष्यों के, जादूगरों के और जादूगरनियों के ‡, दुष्ट शासकों के§, कवों और कृपणों के||, दो जंघाओं वाले सांपों के ¶ और दो जंघाओं वाले धर्मध्वजियों के, चार जंघाओं वाले

* 'मतिं विश्वपेशसम्' मिलाओ ' एषु विश्वपेशसं धियं धा (ऋ० १ । ६१ । १६) से।

† द्विष्–तुर्वाणः। 'तुर्वाणः' मिलाओ तुर्वणि(ऋ० १।१२८।३)से और 'द्रुह्वनः' मिलाओ 'द्रुह्वतरः' (ऋ० १।१२७।३) से ।

‡ पइरिकनाँम् अवेस्ता में यह नाम सर्वत्र यातु के साथ आता है । यह यातुधान स्त्रियों के लिये समझा जाता है । फारसी का परी शब्द इसी से निकला है।

§ 'शास्तृ=शासक' से यहां दुष्ट शासक अभिप्रेत हैं।

|| कव और कृपण अवे० में इकट्ठे आते हैं । कव से अभिप्राय दुष्ट कवि–देखते हुए न देखने वाले, कृपण से अभिप्राय सुनते हुए न सुनने वाले है।

¶ सांप, डंग मारने वाले, दुःखदायी, दुर्जन ।

मेड़ियों के *, और बहुत बड़े अग्रभाग वाली, दौड़ती और उड़ कर आपड़ती हुई सैना के ऊपर मैं सदा विजयी होउं †।

अवे०—इमॅम्. थ्वाँम्. पओइरीम्. यानॅम्.

हओॅम. जइध्येॅमि. दूरओॅष.'.'

वहिश्तॅम्. अह्रूम्. अषओॅनाँम्.

रओॅचङ्हॅम. वीस्पो.ह्वाथ्रॅम्.'.'

इमॅम्. थ्वाँम्. बितीम्. यानॅम्.

हओॅम. जइध्येॅमि. दूरओॅष.'.'

द्रूवतातॅम्. अहॅ:ह्वासॅ-तन्वो.'.'

इमॅम्. थ्वाँम्. थ्रितीम्. यानॅम्.

हओॅम. जइध्येॅमि, दूरओॅष. दरॅगो-जीतीम्. उश्तानहॅ.'.' १९

सं०—इमं त्वां पूर्व्यं * यानम् सोम *गद्यामि दुरोष

वसिष्ठम् असुम् ऋतान्नाम् रोचसं विश्वस्वनित्रम्

इमं त्वां द्वितीयं यानम् सोम गद्यामि दुरोष

*ध्रुवतातिमस्याः तनोः इमं त्वां तृतीयं यानम्

सोम गद्यामि दुरोष दीर्घजीतीम् उश्तानस्य १९

भा०—यह मैं तुझ से हे महातेजस्विन् सोम ! पहली दान ‡ मांगता हूं § । ऋत पर चलने वालों का जीवन सब से उत्तम|| चमकता हुआ, सारा तेज से परिपूर्ण हो। यह मैं तुझ से हे महातेजस्विन् सोम दूसरी दान मांगता हूं मेरे इस शरीर के लिए स्वास्थ्य

---

* मेड़िये—दुष्ट हत्यारे।

† तुर्व् ' दबा लेना, विजय पाना ' चुरादि से । लोट् उत्तम पुरुष एकवचन । धातुपाठ में तुर्व् भ्वादि० पर० है ।

‡ यान, अवेस्ता में संस्कृत से एक निराले अर्थ ' दान ' में प्रयुक्त हुआ है ।

§ गद् 'कहना' सं० में भ्वादि० पर० है, अवे० में दिवादि० पर० है। गद्यामि प्रयोग अवेस्ता के अनुसार है ।

|| वसिष्ठ असु—बड़ा उत्तम जीवन । वहिश्तं अह्रूम् दोनों शब्द इकठे, मरने के पीछे के मिलने वाले उत्तम जीवन के लिए आते हैं । सो 'वहिश्त अह्रूम् ' ही अह्रूम् को छोड़ फारसी का बहिश्त बना है।

हो। यह मैं तुझ से हे महातेजस्विन् सोम तीसरी दात मांगता हूं। (मेरे) अध्यात्मबल का दीर्घ जीवन हो।

अवे०—इमॅम्. थ्वाँम्. तूइरीम्. यानॅम्.

हओॅम. जइद्येमि. दूरओॅष.

यथ. अएषो. इमवा.

थॉफ़्दो. फ़्रुश्तानॅ. जमा.पइति.

त्बएषो तउर्वा. द्रुजॅम्. वनो'.'

इमॅम्. थ्वाँम्. पुख्दॅम्. यानॅम्.

हओॅम, जइद्येमि. दूरओॅष. यथ. वृथ्रजा. वनत्.पॅषनो,

फ़्रुश्तानॅ. जॅम.पइति. त्बएषो-तउर्वा. द्रुजॅम्. वनो'.' २०

सं०—इमं त्वां तुरीय * यानम् सोम गद्यामि दुरोष

* यथैषः अमवान् तृप्तः प्रतिष्ठानि ज्मया प्रति

द्विष्टुर्वाणो द्रुह्वनः इमं त्वां पञ्चथं यानम्

सोम गद्यामि दुरोष यथा वृत्रहा वनत्पृतनः

प्रतिष्ठानि ज्मया प्रति द्विष्टुर्वाणो द्रुह्वनः। २०

यह तुझ से हे महातेजस्विन् सोम! चौथी दात मांगता हूं। मैं अपनी इच्छानुसार* शक्तियों से पूर्ण और (लोगों को सन्मार्ग पर लाता हुआ अपने आप में) तृप्त हुआ, द्वेषियों को दबाता हुआ और द्रोहियों को जीतता हुआ भूमि पर प्रतिष्ठा पाऊं।

यह तुझ से हे महातेजस्विन् सोम पांचवीं † दात मांगता हूं। कि रुकावटों को दूर करता हुआ मैं शत्रुओं की सेनाओं को जीतूं और द्वेषियों को दबाता हुआ और द्रोहियों को जीतता हुआ पृथिवी पर प्रतिष्ठा पाऊं (आगे आगे बढ़ता जाउं)।

अवे०—इमॅम्. थ्वाँम्. ख्शतूम्. *यानॅम्.

हओॅम. जइद्येमि. दूरओॅष'.' पउर्वा. तायूम्. पउर्वा. गदॅम्.

---

* एषः—इष् 'इच्छा करना' से है। एषः, इच्छा देखो। ऋ १। १८०। ४। यथैषः=यथेच्छः।
† पुख्दम्=पञ्चथम् (देखो पा० ५। २। ५०)

पउर्व्. वह्र्कम्. बूइर्योइमइदे.·

मा-चिश्. पउर्वो. बूइ यएत.नो.

वीस्पे. पउर्व्. बूइर्योइमइदे.

सं०—इमं त्वां षष्ठं यानम् सोम गयामि दुरोष

पूर्वम् तायुम् पूर्वम् गधम् पूर्वम् वृकं बुध्येमहि

माकिः पूर्वो बुध्येत नो विश्वे पूर्वम् बुध्येमहि २१

भा०—यह मैं छठी दात तुझ से हे महातेजस्विन् सोम ! मांगता हूं, कि हम चोर से पहले, घातक* से पहले, भेड़िये से पहले जागें (सावधान हों)। मत हम से कोई पहले जागे, किन्तु हम सब से पहले जागें †।

अवे०—हओमो. अएइबिश्. योइ. अउर्वन्तो.

हित. तखषति. अरेनाउम्.

जाव्रे. अओजाम्च. बख्षइति.·

हओमो. आजीज़नाइतिबिश्.

ददाइति. खषएतो-पुथ्रम्.

उत. अषव्-फ्रज़इंतीम्.·

हओमो. तए चित्. योइ. कतयो.

नस्को-फ्रसाङ्हो. आङ्हंते.

स्पानो. मस्तीम् च. बख्षइति.· २२

सं०—सोमः एभ्यो ये अर्वन्तः सितः तक्षन्ति* अरणम्

जवः ओजश्च भक्षयति सोमः आजीजनन्तीभ्यः

---

* गध् डाकू, घातक। 'त्रिगध्' शब्द आप० श्रौ० १९। २६।४। में है। गध्य ऋ० ४।१६।११। और ४।३८।४। में है। गध्य लूट गन्ध् (१० आ) हानि पहुंचाना से है। गद (रोग) गदा (सम्भवतः इस से हैं)।

† चिश्=कि कोई। विश्वे विश्वान् के अर्थ में हैं।

दधाति क्षयत्पुत्रम् उत ऋतावत्प्रजातिम्
सोमः तेचित् ये कतयः नस्कप्रशासाः आसते
शुनमति च भक्षयति २२

भा०—सोम इन को * बल † और पराक्रम देता है‡, जो शूरवीर § सुशिक्षित घोड़ों को || संग्राम (वा जीत) की || ओर बढ़ाते हैं ** । सोम मर्यादानुसार गर्भ धारने वाली स्त्रियों को †† शासन करने वाले वीर पुत्र ‡‡ और धर्म पर चलने वाली संतति§§ देता है |||| । सोम इन को कल्याण और प्रज्ञा देता है जो नस्कों का प्रशासन (उपदेश) करते रहते हैं । ||||

अवे०—हओमो. तास्-चित्. या कइनीनो.

आङ्हहरॅ. दरॅग़ॅम्. अग़्रूवो.

---

* ' अएबिश् ' सं० एभिः । यहां तृतीया चतुर्थी के अर्थ में प्रयुक्त है—एभ्यः ।

† ज़ावॅरॅ=सं० जवस् वा जव 'वेग' । ज़ावॅरॅ से ' ज़ोर ' निकला है ।

‡ ' भक्षयति ' बख्शने अर्थ में है । यह मूल में भज् ' बांटना ' है । इस से स् मिल कर ' भक्षि ' हुआ है । राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह (ऋ० ७ । ४१ । २) राजा भी जिस भाग को मुझे दे (बख्श दे) कहता है । यही भक्ष् फारसी के बख्शीदन का मूल है । भज् बांटना, बख्शना से ही भग बना है ।

§ ' अर्वन्तः ' चढ़ाई करने वाले, वीरों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । ' अर्वन्त् ' ऋ० ६।१२।६ में अग्नि का, और ६ । ३६ । २ में इन्द्र का पर्यायविशेषण है ।

|| सिता २।२ 'सि' बांधना से है । बन्धे हुए । बन्धन में स्थिर रहने वाले, सुशिक्षित ।

|| अरण, ऋ से है, दौड़ वा संग्राम, मिलाओ समर से ।

** तक्षन्ति-तक्ष्, भ्वा० प० अवेस्ता में ' आगे बढ़ाना ' अर्थ में है । मिलाओ 'सुम्नाय त्वामतक्षिषुः ऋ० १ । १३० । ६ । और 'गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट, १।१६३। २ । से । इन में तक्ष् का अर्थ 'प्रोत्साहन युक्त आगे बढ़ाना' प्रतीत होता है ।

†† आजनीजन्तीभ्यः, जन् यङ्लुगन्त से है ।

‡‡ क्षयत्पुत्र–क्षयद्वीर के समान है जो रुद्र आदि के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

§§ प्रजाति–उपनिषदों में बहुधा प्रयुक्त है : फारसी फ़रजन्द, प्रजन्त् से है ।

|||| नस्कप्रशासः—नस्क पारसियों के प्राचीन २१ धर्मपुस्तक थे, जिन में जरथुश्त्र के धर्म का पूरा वर्णन था, जिन में से बहुत से सिकन्दर के विजय के समय नष्ट हो गए ।

इइथीम्. रादँग्च. बव्हइति.

मोषु. जइव्यम्नो. हुख्रतुश् ·.· २१

सं०—सोमः ताश्चित् याः कनीनाः आसिरे दीर्घम् अग्रुवः

सत्यं राधं च भक्षयति मक्षु गध्यमानः सुक्रतुः २१

भा०—सोम उन सब को जो युवतियां * दीर्घ काल कँवारियां रहती हैं एक सच्चा कान्त † देता है, ज्यूं ही कि वह उत्तम कर्मों वाला याचना किया जाता है।

अवे०—हओमो. तम्-चित्. यिम्. कृसानीम्.

अप-ख्षथ्रेम्. निषादयत्.

यो. रओस्त. ख्षथ्रो-काम्य.

यो दव्त. नोइत्. मे. अपाँम.

आथ्रव्. अइविद्दितश्. वृधे. दइ‹हव्. चरात्·.·

हो. वीस्पे. हइदिनाँम. वनात्.

नी. वीस्प. हइदिनाँम. जनात·.· २४

सं०—सोमः तंचित् यं * कृशानिम् अप क्षत्रं निषादयत्

यो अरुद्ध क्षत्रकाम्यया यो * धवत नो इत् मे *अपाम्

अथर्वा *अभ्यापितः वृद्धये देशेष्वा चरात

स विश्व-वृद्धीनां वनात् नि विश्व-वृद्धीनां हनात् २४

भा०—सोम ने निःसन्देह उस कृसानि* को राज्यबल से हटा कर नीचे बिठा दिया

---

* कनीन वेद मे पुंलिङ्ग प्रयुक्त है, देखो ऋ० १। ११७। १८; ३। ४८ १; ८। ६९। १४; १०। ९९। १०; कनीनिका स्त्रीलिङ्ग है।

† राध, कान्त, प्यारा। राधा स्त्रीलिङ्ग प्रसिद्ध है। वेद में राधस् है, जो धन का पर्याय है। (देखो ऋ० ४। ३२। २३)

* कृशानु वेद में सोमरक्षक है। देखो ऋ० ४। २६। ३; ९।६६।२। तै० सं० १। २। ७ और ऐ० ब्रा० ३। २६ तथा ऋ० १। १२२। २१ और १। १५५। २। यहां अवे० में यह कृसानि सोम के विरुद्ध माना गया है।

(सिंहासन से उतार दिया),जो कि राज्यबलकामना में बढ़ा हुआ था,† जिसने (धर्माचार्यों को) धमकाया कि मत कोई अभ्यासी (शास्त्र वेत्ता) पुरोहित इस से आगे ‡ मेरे देश में लोगों की वृद्धि के लिए फिरे । (न हो कि) वह हमारी सारी वृद्धियों को जीतले, हमारी सारी वृद्धियों को नष्ट कर देवे।

अवे०—उश्त.ते. यो. ह्वा अओँजङ्ह.
वसो-ख्षथ्रो. अहि. हओँम ∴
उश्त.ते. अपिव्रतहे. पोउर्वचाँम्. ऋजुख्दनाँम् ∴
उश्त.ते. नोइत्. पइरि. फ्रास.
ऋजुख्द्रम् . पृसहे. वाचिम् ∴ २८

सं०—वषट् ते यः स्वा ओजसा *वश-क्षत्रः आसि सोम
वषट् ते * अपिवित्से पुरुवचसाम् ऋजूक्तानाम्
वषट् ते नेत् परिप्राशा ऋजूक्तां पृच्छसि वाचम् ॥ १८

भलाई हो तेरे लिए हे सोम ! तू जो अपने * बल से वशवर्ती शासन वाला है। भलाई हो तेरे लिए, तू जो सीधे सरल कहे हुए बहुत बड़े वचनों को अपना लेता है† । भलाई हो तेरे लिए, तू जो सरलता से कहे हुए को परिप्रश्न से कभी नहीं पूछता है।

अवे०—फ्रा. ते. मज़्दा. बरत्.
पउर्वनीम्. अइव्याङ्हनँम्.
स्तँहू पएसँङ्हँम्. मइन्यू ताश्तँम्.

---

† रओँस्त=सं० अरुद्ध । रुध् (रुह्) से है। अवे० में यह आ०प० है। वेद में प०प० है देखो। (ऋ० ८।४३।६)

‡ अपाम्, ' इस से आगे ' क्रिया विशेषण है।

* स्वा=स्व+आ=स्वेन ३।१ ।

† अपिवित्से, अपि+विद् अवे० में आत्मनेपद में प्रयुक्त हुआ है। वेद में वि पूर्वक विद् आत्मने पद में प्रयुक्त है। विवित्से।

† परिप्राश् चारों ओर से पूछना, परीक्षा के लिए इधर उधर की बातें पूछना । अथर्व २। २७।१। में है 'प्राश प्रतिप्राशो जहि'।

वङ्गुहीम् . दएनाँम् . माज़्दयस्नीम् '.'

आअँत्. अइ॒ ह् अहि. अइव्यास्तो.

बर्ज़्नुश़् , पइति. गइरिनाँम्.

द्राजङ्हे. अइविदाइतीश़् च. ग्रवस् च. माँथ्रहे '.'　२६

सं०—प्र ते * मज़्दा भरत् † पूर्वाणम् ‡ अभियासनम्

स्तृपेशसम् मन्यू-तष्टम् वस्वीम् || ध्यानाम् मज़्दायज्ञीम्

आत् अस्याः आसि अभियस्तः

¶ वर्ध्नु प्रति गिरीणाम् द्राघीयसे अभिधातेश्च

गृभश्च मन्त्रस्य ।　२६

भा०—तेरे लिए विधाता * पहली † मेखला ‡ लाया, जो तारारूपी मोतियों वाली§,दो आत्माओं से बनाई गई थी। जो मज़्द की पूजा|| की बड़ी उत्तम भक्ति भावना है। इसके अनन्तर उस मेखला से युक्त हुआ तू पर्वतों की ऊंचाई¶ पर रहने लगा, मन्त्र के उच्चारण और तात्पर्य ** की लम्बी रक्षा के लिए।

---

* मज़्दा—मह्+धा से है। अर्थ-बड़ा उत्पादक वा महिमा से पूर्ण, शक्तिमान्, विधाता।

† पूर्वाणं, पुराणं के सादृश्य पर है।

‡ अभियासन—अभि—यास् (गिर्द लपेटना) से है। मेखला जो २४, २४ ऊन के तन्तुओं के तीन फीते मिला कर ७२ तन्तुओं की बनाई जाती है। इस को पारसी हर एक नर नारी पहनता है। जो पहनने के दिन से लेकर मरण पर्यन्त सुरक्षित रक्खी जाती है। यह संस्कार ७ से १५ वर्ष की आयु तक पूरा किया जाता है। इस को नवजात (=नया जन्म) कहते हैं। पारसियों का यह संस्कार आर्यों के यज्ञोपवीत संस्कार से पूरा मेल रखता है। आर्य यज्ञोपवीत को कन्धे पर धारण करते हैं,पारसी मेखला की नाई कमर पर बांधते हैं। स्मृतियों में यज्ञोपवीत संस्कार का नाम मौञ्जीबन्धन (मेखला बांधना) भी है। यज्ञोपवीत से भी पुरुष का दूसरा जन्म माना जाता है, जिस से कि वह द्विज बनता है। पारसीयों में इस संस्कार का नाम ही 'नवजात' है।

§ स्तह्रपएसङ्हॅम्=स्तृपेशसम्। मिलाओ-स्तृभिरन्या पिपिशे (ऋ० ६। ४९। ३) से। स्तृ का प्र० बहु० स्तारः। फारसी स्तारः अंग्रेजी स्टार और फारसी अख़्तर शब्द सम है।

|| दएना अवे० में स्त्री लिङ्ग ध्यान का प्रतिनिधि है। इसी से दीन शब्द निकला है। फार० दीदन 'देखना' इसी से है।

¶ वर्ध्नुम्=ऊंचाई। वृध्+नु प्रत्यय से है।

** गृभ्=पकड़, यहां अभिप्राय तात्पर्य से है।

अवे०—हओम. न्मानो-पइते. वीस्पइते.

जंतु-पइते. दइ॑हु-पइते. स्पनङ्ह. वएद्या-पइते॰॰

अमाइच. थ्वा. वृथ्राग्नाइच.

माव्रोय्. उप-म्रुय्रे. तनुये.

थ्रिमाइ-च. यत्. पोउरु-बओख्नइ॑॰॰ २७

सं०—सोम दम्पते विश्पते * जन्तुपते दस्युपते

श्वनसा विद्यापते अमाय च त्वा * वृत्रघ्नाय च

मह्यम् उपब्रुवे तन्वे *त्रिमाय च यत् पुरुभोजसे २७

भा०—हे सोम, घर के मालिक, ग्राम के मालिक,* प्रान्त के मालिक, देश के मालिक और अपनी पवित्रता से विद्या के मालिक! मैं तुझे शक्ति के लिए, शत्रुओं को मारने के लिए, अपने आप के लिए, और उस रक्षा† के लिए जो बहुतों के बचाने वाली है बुलाता हूं।

अवे०—वी-नो त्विष्व्रताँम्. त्वएषवीश्.

वी. मनो. बर. ग्रमॅताँम्॰॰

यो. विश् च. आह्नि. न्मानॆ.

यो. अइ॑हे. वीसि. यो. आह्नि. जंत्वो.

यो. अइ॑हे. दइ॑ह्नो.

अएनङ्हा. आस्ति. मइ्यो.

गॅउर्वय्.हे. पाद्वे. ज़ाव्रॅ.

पइरि-षे. उषि. वृनूइदि.

स्कॅदॅम्. षे. मनो. कृनूइदि॰॰ २८

---

* विश्पति=ग्राम का मालिक। ऋ० ८।६०।१९ में यह अर्थ सम्भव है।

† त्रिम, त्रा 'रक्षा करना' से म प्रत्ययान्त रूप है। वेद में 'त्रामन्' रक्षा अर्थ में है देखो ऋ० १।५३।१०; ५।४६।६।

सं०—वि नो द्विष्वतां द्वेषेभ्यः वि मनो भर घर्मवताम्

यः कश्च अस्मिन् दमे

यो अस्यां विशि यो अस्मिन् जन्तौ

यो अस्यां दस्यौ एनस्वानस्ति मर्त्यः

गृभाय अस्य पद्भ्याम् जवः

परि अस्य *उषि *वृणुधि विभ्रम् अस्य मनः कृणुधि २८

भा०—परे हमें द्वेषियों के द्वेषों से,परे क्रोध से भरे हुओं के मन को ले जा। जो कोई इस घर में, जो कोई इस ग्राम में, जो कोई इस प्रान्त में, जो कोई इस देश में पाप से पूर्ण मनुष्य है, इसके पाओं से वेग को ले ले,* इस के दिमाग को† उलट पलट कर दे, इस के मन को थका हुआ बना दे।

अवे०—मा. ज़्बरथ्एइब्य्. फ्रतुया.

मा. गव्एइब्य्. अइविःतृतुया.

मा. ज़ॉम्. वएनोइत्. आषिब्य्.

मा. गॉम्. वएनोइत्. आषिब्य.

यो. अएनङ्हइति. नो. मनो.

यो. अएनङ्हइति. नो. कॅहॅपॅम् २९

सं०—मा *ह्रुताभ्यां प्रतुयाः मा* ग्राभाभ्याम् अभितृतुयाः।

मा ज्मां *वेनात आक्षिभ्याम् मा गां* वेनात आक्षिभ्याम्

यः *एनस्यति नो मनः यः *एनस्यति नः कृपम् २९

भा०—मत (उसको) दोनों टांगों के लिए* बल दे (बल वाला बना)†, मत उसको दोनों पकड़ने वाले पंजों से ‡ शक्ति वाला बना, मत वह इस पृथिवी को आंखों से देखे,

२८—* गृभाय=गृहाण। मिलाओ–गृभाय जिह्वया मधु (ऋ० ८। १७। ५) से

† उषि=कान, अभिप्राय दिमाग से है। उषि से फार० 'होश' निकला है।

२९—* ज़्बरथ्इब्य ४। २ ज़्बर् (ह्रु=ह्वर् 'टेढा होना' से हैं। ज़्बरथ्=सं० ह्रुत) अभिप्राय टेढी चालवाली टांगों से है।

† प्रतुयाः–प्र+तु 'बलवान् होना' से विधिलिङ्। मिलाओ फार० तवानीदन 'सकना'।

‡ ग्राभ, ग्रभ् 'पकड़ना' से है, पंजे वा हाथ।

मत वह इस सृष्टि को आखों से देखे,§ जो कोई हमारे मन के लिए पाप का भाव रखता है, जो कोई हमारे शरीर के लिए पाप का भाव रखता है।

अवे०—पइति. अज़ोइश् . ज़इरितहे.

सिमहे. वीषो-वएपहे. कॅह्रपॅम्. नाषॅम्नाइ. अषओने.

हओम. ज़ाइरॅ. वदॅरॅ. जइदि.

पइति. गदहे. वीव्रॅज़्दव्तो. ख्व्रीश्यतो. ज़ज़रानो.

कॅह्रपॅम्. नाषॅम्नाइ. अषओने.

हओम. ज़ाइरे. वदॅरॅ. जइदि. १०

सं०—प्रति अहेः हरितस्य *शिमस्य विष-वापस्य

कृपम् * नश्मने ऋतावे सोम हरे वधर् *जधि (जहि)

प्रति गधस्य विवृत्तवतः *ऋविष्यतः * जाहृणानस्य

कृपम् *नश्मने ऋतावे सोम हरे वधर् *जधि १०

हे सुनहले सोम! तू यज्ञ करने वाले के शरीर की रक्षा के लिए हरे, भयानक * विष उगलने वाले सर्प के विरुद्ध† अपना शस्त्र मार, हे सुनहले सोम धर्म पर चलने वाले के शरीर की रक्षा के लिए ‡, घातक, अधर्मी §, लहू के प्यासे ||, क्रोध से भरे के विरुद्ध अपना शस्त्र मार।

---

§ वेनात् सं० वेन् 'देखना' धातु का रूप है। इसी से वेन 'देखने वाला, ज्ञानी' बना है। मिलाओ फ़ा० वीन से।

३०—* वेद में शिम प्रयुक्त नहीं है किन्तु इसके अर्थ से मेल रखने वाला शिम्यु प्रयुक्त है। दस्यूँञ्छिम्यूंश्च...हत्वा (१।१००।१८)

† प्रति (विरुद्धार्थक) के योग में अवेस्ता में षष्ठी है, वेद में पञ्चमी प्रयुक्त होती है।

‡ नश्मने. नश् 'पाना' से मन् औणादिक प्रत्यय लग कर नश्मन् बना है।

§ विवृत्तवतः, वृज् 'काम करना' यहां धर्म के विपरीत काम कर चुके के लिए प्रयुक्त है।

|| मिलाओ 'ऋविष्णुः' (ऋ० १०।८७।५) से

अवे०—पइति. मश्येहे. द्रवतो.

सास्तर्श्. अइवि-वोइज्दयंतहे. कमृदम्.

कॅहर्पम्. नाषम्नाइ. अषओने.

हओम. ज़ाइरे. वद्रॅ. जइदि'.'

पइति. अषमओद्हे. अनषओनो.

अह्नम्. मृचो. अइ'ह्या. दएनया. मॉम्. वच. द्धानहे.

नोइत्. श्यओथ्नाइश्. अपयंतहे.

कॅहर्पम्. नाषम्नाइ. अषओने.

हओम. ज़ाइरे. वद्रॅ. जइदि'.' ३१

सं०—प्रति मर्त्यस्य द्रवतः शास्तुः *अभिवेजयतः *कमूर्धानम्

कृपम् *नश्मने ऋतान्ने सोम हरे वधर् जधि

प्रति ऋतमोघस्य अनृतवतः *असुमृचः अस्याः *ध्यानायाः

मनो वचो दधानस्य नेत् च्यौत्नैः आपयतः

कृपम् नश्मने ऋतान्ने सोम हरे वधर् जधि। ३१

भा० —(धर्म से) विचलित होते हुए, (घमण्ड मे) अपनी खोपरी को ऊँचा किये हुए, दुष्ट शासक के विरुद्ध अपना शस्त्र मार हे सुनहले सोम! यजमान के शरीर की रक्षा के लिए। सचाई को झुटलाने वाले, झूठ से प्यार करने वाले, आत्मा का हनन करने वाले के विरुद्ध अपना शस्त्र मार हे सुनहले सोम! यजमान के शरीर की रक्षा के लिए, जो कि इस धर्म को मन वाणी से प्यार करता है चाहे वह अनुष्ठान में पूरा नहीं उतरा है।

अवे०—पइति. जहिकयाइ. यातुमइत्याइ.

मओदनो-कइर्याइ. उपश्ता. बइर्याइ.

येंहे. फ़्रफ़्रइति. मनो.

यथ. अब्रॅम्. वातोष्रॅतॅम्.

कॅहृपॅम्. नाषॅस्राइ. अष्ओनॅं.

इओॅम. ज़ाइरॅ. वदॅरॅ. जइदि ':'

यत्. हे. कॅहृपॅम्. नाषॅस्राइ. अषओनॅं.

इओॅम. ज़ाइरॅ. वदॅरॅ. जइदि. ':' ३२

सं०—प्रति हासिकायै यातुमत्यै मोदनकर्यै उपस्थभर्यै
यस्याः प्रप्रवति मनो यथा अभ्रं वातसूतम्
कृपम् नश्मने ऋताव्ने सोम हरे वधर् जधि
यत् अस्याः कृपम् नश्मने ऋताव्ने
सोम हरे वधर् जधि। ३२

भा०—त्यागी हुई जादूगरनी के (और) मोद मनाने वाली व्यभिचारिणी के विरुद्ध, जिस का मन वायु से धकेले गए मेघ की तरह आगे छलांगता है, हे सुनहले सोम अपना शस्त्र मार यज्ञ करने वाले के शरीर की रक्षा के लिए। हे सुनले सोम! मार अपना शस्त्र यज्ञ करने वाले की शरीर की रक्षा के लिए *।

हओॅम यश्त् समाप्त हुआ।

---

* अन्त के दो पाठों का अभ्यास अध्याय की समाप्ति का चिह्न है।